युवक पथ-प्रदर्शक

(विवाहितों और विवाहार्थी युवकोंके लिये अनुपम पुस्तक)

लेखक—
ठाकुर राजबहादुर सिंह



प्रथम बार] भाद्रपद सम्वत् १९९३ वि० [मूल्य १)

प्रकाशक—
कामता प्रसाद वर्मा
कलकत्ता-पुस्तक-भण्डार
१७१-ए, हरीसन रोड,
कलकका ।



मुद्रक :—
उमादत्त शर्मा
रत्नाकर-प्रेस
११ ए, सैयदसाली लेन
कलकत्ता ।

विषय सूची



प्राक्कथन

संसारमें जीवन-यात्राको सुचारु रूपसे तय करनेके लिये पुरुषको गृहस्थ बननेकी आवश्यकता पड़ती है। यह सच है कि अति प्राचीन कालमें मनुष्य गार्हस्थ्य बन्धनमें न पड़कर स्वतन्त्र विचरण करता था और वह अधिक विकसित मस्तिष्क न रखनेके कारण खाने पीने, रहने-सहने और इन्द्रिय परायणताके सम्बन्धमें पशुओंकी अपेक्षा बहुत अधिक सुधरा जीवन नहीं व्यतीत करता था; किन्तु मनुष्य ज्यों-ज्यों अपने आहार-विहार और रहन-सहनमें अपेक्षाकृत सुधार लानेका प्रयत्न करने लगा त्यों-त्यों उसकी ऐन्द्रिक प्रवृत्तियोंमें भी संयम और संस्कारकी मात्रा बढ़ने लगी। धीरे-धीरे वह अवस्था आ गयी जब पातिव्रतकी भांति एक पत्नी-व्रत भी आदर्श समझा जाने लगा और सभी धर्मोंके अनुयायियोंने एक पत्नी-व्रतको बहु व्याहकी अपेक्षा अधिक उत्तम और प्रशंसनीय मानना शुरू कर दिया। इस प्रकार विकास-क्रममें एक लम्बा सफर तय कर चुकनेके बाद मनुष्य उस स्थितिमें आया है जब उसे अपना एक ऐसा स्वाभाविक जोड़ा मिला जिसे उसने न केवल ऐन्द्रिक तृप्ति ही के लिये प्रत्युत खाने-पीने, रहने-सहने, सुख-दुःख आदि सभीमें समान भाग लेनेके लिये, प्राप्त किया। इस दशामें पत्नीका महत्त्व बहुत अधिक बढ़ गया और उसे 'अर्द्धाङ्ग' तथा 'Better half' कहा जाने लगा। यही क्यों, हिन्दू-समाजमें तो पत्नीको इतना अधिक महत्त्व दिया गया कि बिना उसके कोई भी शुभ कर्म,

यज्ञ-योग और धर्मानुष्ठान पूर्ण ही नहीं माना जाता। न्यूनाधिक सभी धर्मों और सभी समाजोंमें स्त्रियोंको महत्त्व और आदरसे पूर्ण स्थान मिल गया। अब स्त्रियोंको घड़ेकी तरह बदल डालना या एकके रहते अनेकको घरमें ला बैठाना अवाञ्छनीय समझा जाने लगा। इस प्रकार जिस स्त्रीको अपनी चिरसंगिनी बनाकर सुख और दुःखमें सदा सर्वत्र अपनी बनाये रहने का सामाजिक विधान पुरुष-समाजको प्राप्त हुआ है, उसके प्रति सभी विषयोंमें समुचित व्यवहार करना उसका कर्त्तव्य हो जाता है। प्रस्तुत पुस्तक में इन्हीं विषयों पर प्रकाश डालते हुए स्त्रीके प्रति पुरुषके विभिन्न कर्त्तव्यों का दिग्दर्शन करानेकी चेष्टा की गई है। जमाना बदल गया है। जिस प्रकार अति प्राचीनकालकी प्रथाओंमें धीरे-धीरे आवश्यक सुधार करके समाजका वर्तमान रूप प्रादुर्भूत हुआ है उसी प्रकार समयकी गति इतनी आगे बढ़ चुकी है कि हमें अपनी कतिपय रूढ़ियों और मूर्खताओंको दूर करनेका उपक्रम करना ही होगा—बिना इसके समाज 'सड़ा हुआ' ही समझा जायगा। उदाहरणके लिये लैंगिक (Sexual) ज्ञानको ही लीजिए। मध्यकालसे अब तक इस विषयको परम गोपनीय बनाये रखनेके कारण वेश्यावृति और अनुचित सम्बन्ध आदिकी वृद्धि द्वारा समाजका जो अपकार हुआ है, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

वर्तमान युग मनोविज्ञानका युग है। इसलिये सभी प्रकट और गुप्त बातोंकी छानबीन कर उसे सर्व साधारणके सम्मुख रखना विज्ञानका एक अङ्ग बन गया है। यही कारण है कि हमने प्रस्तुत पुस्तकमें लैंगिक (Sexual) विषयोंकी चर्चा करनेमें हिचकिचाहट नहीं दिखलायी, क्योंकि वैसे चाहे कोई यह भले ही कह ले कि स्त्री-पुरुषका सम्बन्ध विषय-भोग और सन्तानोत्पत्तिके लिये नहीं है; किन्तु पूर्ण विचारके पश्चात् हमें यह मानना ही पड़ेगा कि दम्पतिका प्रधान उद्देश्य यही होता है। ऐसी

अवस्थामें इस मुख्य विषयके ज्ञानसे वंचित रखना मूर्खता नहीं तो क्या है ? हम यह भी मानते हैं कि स्त्री-पुरुषका संयोग आध्यात्मिक उन्नतिके लिये भी है, किन्तु संसारमें रहकर कोई संसारकी बातोंको उपेक्षाकी दृष्टिसे नहीं देख सकता। इसलिये काम-विज्ञान सम्बन्धी आधुनिक बातोंका समावेश इस पुस्तकमें किया गया है। आशा है विद्यार्थी और विवाहित युवक वृन्द इस पुस्तकसे यथेष्ट लाभ उठाकर हमारे परिश्रमको सफल बनावेंगे।

दीपमालिका, १९९२ वि० }
श्रीवेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई }

राजबहादुर सिंह

ब्रह्मचर्य का महत्व

यह पुस्तक प्रत्येक बालक-बालिका तथा युवा-युवतीके लिये सञ्जीवनी बूटीका काम देती है। जिन्हें इस संसार-क्षेत्रमें अभी कुछ कर गुजरना है और जो संसारके सच्चे सुखके लिये लालायित हैं, उनके लिये यह कल्प वृक्ष है। जिसने अज्ञानवश या बुरी संगतिमें पड़कर अपनेको वर्बाद कर डाला हो, जो बुरी आदतोंका गुलाम बन गया, जिसकी आत्मापतित, आचरण भ्रष्ट और शरीर दुर्बल हो गया हो; वह इस पुस्तकको पढ़ कर नवजीवन प्राप्त कर सकता है। तथा ब्रह्मचर्यके गुणोंको ग्रहण कर जीवन का सच्चा सुख लूट सकता है।

प्रत्येक विद्यार्थी, गृहस्थ तथा नौजवानको इस पुस्तकको गलेहारकी तरह अपनाना और अपने पास रखना चाहिये।

मूल्य केवल ।।।)

कलकत्ता-पुस्तक-भण्डार

१७२-ए, हरीसन रोड,

कलकत्ता।

युवक-पथ-प्रदर्शक

किशोरावस्थाका अन्त

खेलने-कूदने और बाल-सुलभ क्रीड़ा करनेके दिन जब व्यतीत हो चुकते हैं; एक लड़का जब साधारण पढ़ाई-लिखाईकी अवस्था पार कर चुकता है, तब उसे अपेक्षाकृत निर्धन श्रेणीके माता-पिता कोई काम-धाम सीखनेके लिये बाध्य करते हैं और उच्च श्रेणीका सम्पन्न परिवार उसे आगे बढ़कर कालेज आदिमें पढ़ने या किसी कला-विशेषका अध्ययन करनेके लिये प्रेरित करता है। यह वह अवस्था है जब लड़कोंको लड़कपन छोड़नेके लिये तैयार होना

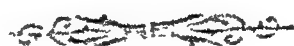
पड़ता है। अब तक माता-पिता और परिवारके लोग उसकी भूलों और गलतियोंपर विशेष लक्ष्य नहीं करते थे और उसकी छोटी-मोटी गलतियाँ लड़कपनमें गिनी जाती थीं; किन्तु अब चूंकि वह अपनी किशोरावस्थाको पार कर चुका है और ऐसा समझा जाता है कि अब उसे संसारमें भले-बुरेका कुछ ज्ञान हो चला है, अतः उसकी साधारण भूलें भी क्षम्य नहीं समझी जातीं और उसकी बातोंका कुछ मूल्य समझा जाने लगता है।

किशोरावस्थाका अन्त होते समय लड़कोंकी स्वाभाविक कोमलता धीरे-धीरे दूर होने लगती है—उनके अङ्ग सुदृढ़ होने लगते हैं और कण्ठ-स्वर मोटा हो जाता है। इस उम्रमें लड़के स्वयं अपने अन्दर एक परिवर्तन अनुभव करते हैं—उन्हें ऐसा प्रतीत होता है कि वे एक नये युगमें प्रवेश कर रहे हैं। यद्यपि यह अवस्था लड़केमें पुरुषत्वके विकासका काल है; पर मूर्खतावश बहुत-से लड़के और उनके माँ-बाप यह समझ बैठते हैं कि इन दिनों लड़कोंमें स्त्री-जातिके प्रति साधारण आकर्षण उत्पन्न हो जाता है, अतः वे ऐन्द्रिक भोगके लिये योग्य हो जाते हैं। इस भारी भूलमें पड़कर कितने ही लड़के तो स्वयं अपना नाश कर लेते हैं और कितनोंहीके नाशका कारण उनके माता-पिता तथा परिजन बन जाते हैं। यद्यपि पन्द्रह-सोलह वर्षकी अवस्थासे ही लड़कोंमें उपर्युक्त प्रवृत्ति जागरित हो जाती है, किन्तु यह पुरुषत्वके विकासका श्रीगणेश होता है जो धीरे-धीरे बीस वर्षकी अवस्थामें साधारणतः और चौबीस वर्षकी उम्रमें पूर्णतः परिपक्व होता है। जो लड़के इस षोडशवर्षीय प्रथम उमङ्गको

वास्तविक प्रवृत्ति समझ कर इसकी ओर अधिक ध्यान देते हैं, वे अपने स्वास्थ्यको जन्म भरके लिये बिगाड़ लेते हैं और उन्हें अनेक बुरी आदतोंका शिकार बनना पड़ता है। जिस प्रकार दूधको पहले उफानमें ही उतार लेनेपर उसमें पके दूधका स्वाद और गुण नहीं आता, उसी प्रकार लड़कपनमें ही ऐन्द्रिक भोगमें पड़ जानेवाले लड़केके जीवनमें कभी पुरुषोचित गुण और वास्तविक युवावस्था आ ही नहीं सकती। जिस मकानकी नींव ही कमजोर है उसका ऊपरी भाग कैसे सुदृढ़ हो सकता है। कभी न कभी ऐसा मकान समयके पहले ही गिरेगा। इसी प्रकार लड़कपनमें कुसंगतिवश अथवा माता-पिताकी मूर्खतापूर्ण प्रेरणासे विवाह कर लेनेपर जो लड़के युवावस्था प्राप्त करनेके पूर्व ही काम-वासनामें लिप्त हो जाते हैं, उनकी युवावस्था, प्रौढ़ावस्था और वृद्धावस्था (यदि बुढ़ापे तक वे जीवित रह सकें तो) एक-सी ही व्यतीत होती है। जवानीका जोश क्या है, इसका अनुभव वे अपने जीवनमें नहीं कर पाते—न उनसे शारीरिक परिश्रम ही भली भाँति हो सकता है न मानसिक ही। इस तरह एक प्रकार वे अपने नाशका कारण बनकर जीवनको बोझकी तरह ढोते हुए उसका अन्त करते हैं। थोड़ी-सी भूलके परिणाम-स्वरूप उनका सारा जीवन मिट्टीमें मिल जाता है। इसलिये प्रत्येक समझदार लड़के और उसके माता-पिताको चाहिए कि इस अवस्थामें अत्यन्त सावधानीसे काम लेकर अपने जीवनकी नींवको सुदृढ़ बनालें जिससे आगे चलकर उन्हें उक्त कष्ट न झेलने पड़ें और वे अपने शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्यका स्वाभाविक आनन्द प्राप्त कर सकें।

किशोरावस्थामें बालकका शारीरिक और मानसिक विकास होता है अतः वह प्रत्येक बातकी ओर बहुत जल्दी आकर्षित होता है—उसका मस्तिष्क उस अवस्थाको प्राप्त कर लेता है, जब उसमें स्वाभाविक उत्कण्ठा और ग्रहण-शक्तिका सुन्दर सुविकास हो उठता है। प्रत्येक बात जाननेमें वह स्वाभाविक तल्लीनता प्रकट करता है, ऐसी अवस्थामें उसे नाशकारी प्रवृत्तियोंका शिकार न होने देकर यदि पढ़ाने-लिखाने, नयी बातोंका ज्ञान प्राप्त करनेमें लगाया जाय तो उसका मन शीघ्र ही उसे ग्रहण कर लेगा और उसका शरीर भी तदनुरूप काम करने योग्य बन जायगा। युवावस्थाकी प्रौढ़ता प्राप्त करनेके पूर्व जो लड़के जिस क्षेत्रमें डाल दिये जाते हैं, वे निश्चय ही उसमें उन शिक्षार्थियोंकी अपेक्षा अधिक सुयोग्य होकर निकलते हैं जो मानसिक एवं शारीरिक प्रौढ़ता प्राप्त करनेके बाद ऐसे क्षेत्रोंमें प्रविष्ट होते हैं। 'फ़िज़िकल कलचर' नामक एक स्वास्थ्य-सम्बन्धी पत्रमें जर्मनीके यन्त्र-सम्बन्धी कार्य करनेवालोंके सम्बन्धमें जो आँकड़े प्रकाशित हुए थे, उनसे मालूम होता है कि यन्त्रों (मशीनों) के कार्यमें ऐसे युवक अधिक संख्यामें सफल और सुदक्ष हुए हैं जिन्होंने यह काम किशोरावस्थामें ही आरम्भ कर दिया था। इसी प्रकार भाषा-ज्ञान भी इसी अवस्थामें सर्वोत्तम रीतिसे होता है। रटने और ग्रहण करनेकी शक्ति इस अवस्थामें सबसे तीव्र होती है, इसीलिये प्राचीनकालसे ही हमारे ऋषि-महर्षियोंने इस अवस्थाको केवल विद्याध्ययन और खेल-कूदके लिये नियुक्त किया था और जब तक विद्याध्ययन पूरा न हो, तबतक किसी भी विद्यार्थीको विवाह

करने या गृहस्थाश्रममें प्रवेश करनेकी आज्ञा नहीं थी। उक्त प्रणाली का लोप हो जानेके कारण आज हममें शारीरिक और मानसिक ह्रास इतना अधिक आगया है कि हमारा राष्ट्रका राष्ट्र ही निष्प्राण हो चला है। प्रत्येक समझदार बालकको चाहिये कि वह अपने जीवनके इस अभ्युदय-कालका सदुपयोग करनेके लिये कुसंगतोंसे बचे और यदि माता-पिता मूर्खतावश उसे इसी अवस्थामें विवाह-बन्धनमें जकड़ना चाहें तो उनसे साफ इन्कार कर दें। अपना समय केवल पढ़ने-लिखने खेलने-कूदने और नयी बातें सीखनेमें लगाये। सफलतापूर्ण जीवन प्राप्त करनेके लिये पूरे विवेकके साथ बुराइयोंसे बचते रहनेकी चेष्टा करे और क्षणिक उफानकी तरंगमें अपने धैर्यको न खोये। इस प्रकारके आचरणसे बालक अपने जीवनकी पहली सीढ़ीको सफलतापूर्वक पारकर जायगा और वह अवस्था, जो सबसे नाजुक और सबसे महत्त्वपूर्ण है, सुखसे पूरी कर युवावस्थामें प्रवेश करेगा।



युवावस्थाका उदय

युवावस्थाका उदय प्रायः अठारह वर्षके लगभग होता है और यदि संयम पूर्वक जीवन व्यतीत किया जाय, तो पैंतीस वर्ष तक उसमें अभिवृद्धि होती रहती है। शरीर-शास्त्र-विशारदों का कथन है कि इस अवस्थामें शरीरके प्रत्येक अवयवका विकास होता है—इसीलिये हमारे प्राचीन ऋषियोंने सर्वोत्तम ब्रह्मचर्य-पालनकी व्यवस्था अड़तालीस वर्षकी दी थी। आजकलकी स्थितिको देखते हुए तथा उत्तम शिक्षा, तपोभूमियोंके शुद्ध वातावरणके अभावमें उत्तम और मध्यम ब्रह्मचर्यका पालन तो इतना दुरूह हो गया है कि उसके पालन करने वाले कदाचित बन-उपवनोंमें भी बिरले ही मिलेंगे,

फिर भी अच्छे माता-पिताका लड़का अपने घरमें रहते हुए भी धार्मिक शिक्षा और पारिवारिक नियंत्रणके बलपर साधारणतः चौबीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य पालन कर सकता है।

ब्रह्मचर्य-पालन पर अधिक जोर देनेका मतलब यह नहीं है कि विवाह करके गार्हस्थ्य जीवन व्यतीत करना कोई बुरी बात है। वास्तवमें प्रत्येक युवकका उद्देश्य तो यही होना चाहिए कि वह विवाह करके गृहस्थ बने और अपने पैरों पर खड़े होकर संयम पूर्वक जीवन व्यतीत करे, किन्तु परिपक्वावस्था प्राप्त करनेके पूर्व उन्हें विवाहसे परहेज ही करना चाहिए। वर्तमान परिस्थितिको देखते हुए और माँ-बापके अल्पावस्थामें ही विवाहित हो जानेके कारण सन्तानमें यकायक इतना संबल नहीं होता कि वे ब्रह्मचर्यकी पूर्ण अवस्था तक संयम पूर्वक अपनेको संभाले रख सकें। इसलिये ऋषियों द्वारा उपर्युक्त अवस्था-क्रमसें ढील देनेकी आवश्यकता पड़ गयी है और अब डाक्टर, वैद्य तथा हमारे समाजशास्त्री भी इस बातसे सहमत हो गये हैं कि देश काल और पात्रके अनुसार वैवाहिक क्रममें अन्तर पड़ जाना कोई अवाञ्छनीय बात नहीं है। ऐसे लोग विवाहके लिये छब्बीस वर्षकी अवस्थाको सर्वोत्तम, बाईस वर्षकी वयको मध्यम तथा अठारह वर्षकी उम्रको निकृष्ट मानते हैं। हम भी वर्तमान कालमें इसीका समर्थन उचित समझते हैं, क्योंकि नगरों और कस्बोंके कृत्रिमतापूर्ण जीवनमें पड़कर तथा कुसंगतिके चक्करमें पड़कर भी कितने ही युवक विवाहके अभावमें प्राकृतिक और अप्राकृतिक व्यभिचारोंसे लिप्त होकर अपना जीवन नष्ट कर लेते हैं,

इसलिये इससे उत्तम तो यही है कि ऐसे युवक विवाहित हो जायँ और अपेक्षाकृत कम खतरेका जीवन व्यतीत करें ।

यह तो हुई स्वास्थ्यरक्षाके लिये ब्रह्मचर्य-पालनकी आवश्यकता। अब शिक्षा पर विचार करना आवश्यक है। जिस प्रकार किशोरावस्थामें बालक अपना समय आरम्भिक शिक्षा अर्थात् भाषा-ज्ञानकी पूर्तिमें लगाता है, उसी भाँति युवावस्थामें उसे विषय (Subject) ज्ञानकी पूर्तिमें लगाना चाहिये। अपनी-अपनी मनोवृत्ति और शारीरिक एवं मानसिक क्षमताके अनुसार युवकोंको शिक्षाका चुनाव करना उचित है। विश्वविद्यालयकी आधुनिक कालेज-शिक्षा-प्रणाली इतनी कृत्रिम, निकृष्ट और अनुपयोगी हो गयी है कि वह बहुत ही थोड़े विद्यार्थियोंके लिये थोड़े बहुत अंशोंमें कुछ काम की सिद्ध होती है—वास्तविक बात तो यह है कि विदेशी भाषाके माध्यम द्वारा कोरी ज्ञान-प्राप्तिके लिये भी यह शिक्षा-प्रणाली उपयोगी नहीं सिद्ध हो सकती, क्योंकि प्रायः कालेजोंकी पढ़ाईमें भी किसी विषय को समझ कर हृदयंगम करनेकी अपेक्षा उसे रटकर परीक्षाके समय किसी प्रकार ज्योंका त्यों लिख देनेकी क्षमता प्राप्त कर लेने पर ही अधिक जोर दिया जाता है। इसलिये सिवा ऐसे अमीर युवकोंके, जिन्हें थोड़ा-बहुत सैद्धान्तिक ज्ञान प्राप्त करना ही अभीष्ट होता है, मध्यम और निम्न श्रेणीके विद्यार्थियोंके लिये इस प्रकारकी शिक्षा अनुपयोगी ही नहीं, हानिकारक भी होती है, क्योंकि आर्थिक कठिनाइयोंके झेलते हुए भी वे जितने रुपये खर्च करके चार छः वर्ष में बी० ए० या एम० ए० पास करते हैं, उतना रुपया पास करनेके

बाद अपने जीवन भरमें नहीं बचा सकते और प्रायः ऐसे अधिकांश लोगोंको बेकारीका शिकार बन दर-दर भटकना पड़ता है। उनकी विद्याका उपयोग दूसरेकी दया पर निर्भर होता है और इस देशमें अब ऐसे पढ़े लिखेके लिये आजीविका कमानेका कोई भी क्षेत्र खुला नहीं है। इन बातों पर विचार करते हुए हमें विवशतः यह कहना पड़ता है कि इस प्रकारकी नामधारी उच्च शिक्षासे यथासम्भव बचना चाहिए और हाई स्कूल तक शिक्षा प्राप्त करके ही कोई हाथसे काम करनेका धन्धा सीखना चाहिए, जिसमें अब भी थोड़ी बहुत गुंजाइश है। इस प्रकारका काम कलों, कारखानों और दूकानोंमें तथा छोटे-मोटे बुनाई, सिलाई, कताई, रंगाई आदिकी व्यक्तिगत संस्थाओंमें सीखे जा सकते हैं। यद्यपि आजकलकी मैट्रिक तककी पढ़ाई कोई पढ़ाई नहीं है, क्योंकि उससे किसी विषयका क्रियात्मक तो क्या सैद्धान्तिक ज्ञान भी नहीं हो पाता, और विद्यार्थी इतना पढ़कर किसी प्रकार टूटी-फूटी भाषामें अपने विचार मात्र व्यक्त कर लेता है, किन्तु प्रायः यह देखनेमें आता है कि इतना पढ़कर ही अधिकांश विद्यार्थियोंका दिमाग सातवें आसमान पर चढ़ जाता है और वह हाथसे काम करना घृणाजनक समझने लगते हैं। संसारके दो सर्वांश सभ्य और सुसम्पन्न देश अमेरिका और जापानके निवासी हाथसे काम करनेको इतना गौरव प्रद समझते हैं कि इस समय सारे संसार में उनका अनुकरण किया जा रहा है। अमेरिकाके गरीब विद्यार्थी तो होटलोंमें बर्तन मांज कर, बाजारमें बूट पालिश करके पुस्तक-पत्रिकाएँ और साबुन आदि नित्योपयोगी वस्तुओंकी फेरी लगाकर

धन कमाते और उसीसे विद्याध्ययनका खर्च चलाते हैं। एक ओर अमेरिका जैसे सुसम्पन्न देशकी ओर देखिये कि जिसकी प्रति व्यक्तिकी प्रति दिनकी औसत आमदनी ८ डालकर प्रदि दिन है और एक ओर इस गरीब भारतकी तरफ दृष्टिपात कीजिए जिसकी प्रति व्यक्तिकी दैनिक आमदनीका औसत मुश्किलसे ११ पाई है! अमेरिकाका अमीर तो रेलगाड़ीसे उतर कर अपना सूटकेस अपने हाथसे ले चलनेमें नहीं हिचकिचाता और हिन्दुस्तानके अर्द्धशिक्षित और दरिद्र बाबू अपने छोटेसे हैण्डबेगके लिये भी कुलीकी तलाश करते हैं। पर हम लोगोंके कुसंस्कारका यह फल है और इसका कारण यह भी है कि हमें हाथसे काम करनेका महत्त्व नहीं बतलाया जाता और न कोई इसका आदर्श ही खड़ा करता है। हमारे उच्च श्रेणीके व्यक्ति यदि इस एक दिशामें ही कुछ आदर्श लोगोंके सम्मुख रखें तो उससे बहुत कुछ काम हो सकता है। गत भूकम्पमें पं० जवाहरलालजी नेहरूने फावड़े चलाये थे उनकी देखा-देखी कितने ही अमीर विद्यार्थी और अन्य लोग फावड़े लेकर जुट पड़े थे। महात्मा गांधीका चर्खा चलानेका आदर्श भी इसी रूपमें व्यापक रूप प्राप्त करने लगा था। इस सिलसिलेमें यहां एक ऐसा उदाहरण देना भी अनुचित न होगा जो इन पंक्तियोंके लेखकसे सम्बन्ध रखता है। बारह वर्ष तक अमेरिका प्रवास करके लौटे हुए एक बंगाली ब्राह्मणसे भारतकी राजधानीमें मुझसे परिचय हुआ और धीरे-धीरे उनके सद्गुणोंके कारण इन पर अपार श्रद्धा हो गयी। वे मेरे पास आने-जाने लगे। उन दिनों वे सरकारी नौकरीमें एक उच्च

कोटिके अफसर थे। संयोगवश एक दिन मुझे दिल्लीसे प्रयाग जाना था। मेरे पास सामान अधिक था और एक बड़ा सूटकेस पुस्तकोंसे ठसाठस भरा था। मेरा मकान गलीमें—मुख्य सड़कसे बहुत दूर था, इसलिये मैंने कुली बुलानेके लिये एक लड़केको बाजारमें भेज दिया। उसी समय उपर्युक्त बंगाली बाबू वहां आये और हम लोगोंको सामान पास रक्खे कुलीकी प्रतीक्षा करते देखा। हम लोग चिन्तित हो रहे थे, क्योंकि गाड़ीका समय थोड़ा रह गया था और सामान चौराहे तक पहुंचा कर तांगा करना था। बंगाली बाबूने जब यह बात मालूम की तो आव देखा न ताव फौरन उठ खड़े हुए और पुस्तकोंसे भरा हुआ बड़ा सूटकेस उठा कर चौराहेकी ओर रवाना हो गये। उनको ऐसा करते देख पहले तो हम लोगोंने उन्हें ऐसा करनेसे मना किया; पर जब वे किसी तरह न माने तो बाकी बचे हुए सामानको मैं और मेरे एक साथी लेकर उनके पीछे-पीछे चल पड़े। चौराहे पर पहुंच कर तुरन्त ताँगा करके स्टेशन पर पहुंचे तो वहाँ गाड़ी अन्तिम सीटी दे चुकी थी—खैर किसी तरह चलती गाड़ीमें सामान डाल कर मैं गाड़ीमें बैठ गया। यदि बंगाली बाबूने उस समय वह सूटकेस उठा कर हम लोगोंको अपना सामान उठाने के लिये प्रोत्साहित न किया होता तो वह गाड़ी न मिलती और मैं जिस मुकद्दमेकी पेशीमें इलाहाबाद जा रहा था, उसमें उपस्थित न हो सकता। उपर्युक्त बंगाली बाबू कोई साधारण आदमी नहीं था। वे दर्शन विज्ञान, भाषा शास्त्र, इतिहास, नाट्यशास्त्र, अर्थशास्त्र, मनो-विज्ञानके पण्डित हैं और अनेक विषयोंमें आश्चर्यजनक अन्वेषण

कर चुके हैं। इन गहन विषयों पर आपने अमेरिकामें हज़ारों व्याख्यान दिये और अङ्गरेजीमें पुस्तकें लिखी हैं। एक ऐसे व्यक्ति का तीस सेरका बोझ उठाकर चल पड़ना, हम लोगोंके लिये कैसा लज्जास्पद मालूम हुआ होगा और हमें अपनी नज़ाकत पर कैसा परिताप हुआ होगा, इसका अनुमान सहज ही किया जा सकता है। पीछे मैंने बंगाली बाबूसे बातें कीं तो वे कहने लगे कि अमेरिका में ग़रीब और मध्यम श्रेणीके व्यक्ति ही नहीं, अमीर लोग भी अपने इतने सामानके लिये कुली नहीं खोजते, जितना वे स्वयं ले जा सकते हैं।

युवकोंमें हाथसे काम करनेका गौरव बढ़ जाने पर देशका दुर्भाग्य बहुत कुछ दूर हो सकता है। प्रत्येक युवकको चाहिये कि वह अपने विकासकी अवस्थामें जितने भी गुण सीख सकें सीख लें, क्योंकि इसी अवस्थाकी सीखी हुई विद्या और शिल्पकला जीवन-भर काम आती है। जीवन ऐसा अनिश्चित और विविध परिस्थितियोंसे पूर्ण है कि यह पता नहीं कि आज जो सम्पन्न है, कल वह दरिद्र नहीं हो जायगा। ऐसे दुर्दिनके समय कला-विद्या-सम्पन्न-व्यक्ति कम कष्ट उठाता है, क्योंकि वह कोई न कोई काम करके अपनी आजीविका पैदा ही कर लेता है।

विकासकी यह अवस्था चारित्रिक दृष्टिसे भी अत्यन्त महत्त्व-पूर्ण है। यह वह अवस्था है जब मनुष्यमें युवावस्थाके उदयके साथ-साथ वासनाओंका तूफ़ान उठता है। विवाहित होकर भी जो लोग ऐसे समय पर संयमसे काम लेते हैं, वे आगे चलकर स्वास्थ्यकी

रहिसे बहुत सुखी रहते हैं। वीर्यकी रक्षा उनमें बुढ़ापा जल्दी नहीं आने देती। संयमशील और ब्रह्मचारी व्यक्तियोंके केश, दाँत और अन्य शारीरिक अवयव शीघ्र शिथिल नहीं होते। इसके विपरीत जो लोग वीर्य रक्षाका ध्यान नहीं रखते और अपने ऊपर काबू नहीं रख सकते, उनका शारीरिक ह्रास थोड़ी अवस्थामें ही हो जाता है और वे शीघ्र ही बुढ़ापेके शिकार बन जाते हैं। यह देखी बात है, जिसके लिये किसी विशेष उदाहरणकी जरूरत नहीं। आप ऐसे अनेक लोगोंको देखिये जिन्होंने इस अवस्थामें संयम नहीं किया होगा, वे अवश्य ही शारीरिक कष्ट भोग रहे होंगे। युवावस्थामें असंयमसे उत्पन्न होने वाले रोगोंका वर्णन आगे एक दूसरे अध्यायमें किया जायगा, अतः यहाँ केवल इतना बता देना ही काफी होगा कि इस अवस्थामें तीन बातों पर विशेष ध्यान देना उनके जीवन भर को एक प्रकारसे सुरक्षित कर देता है। इनमें पहली बात है समुचित भोजन और पूर्ण व्यायाम। दूसरी बात है, ब्रह्मचर्यपालन और तीसरी है शिक्षा और शिल्प सम्बन्धी बातोंमें अधिक जान-कारी प्राप्त करना। जिन नवयुवकोंने इन तीनोंको ध्यानपूर्वक ग्रहण कर लिया है, उनकी जीवन-यात्रा सुखमय होगी और जिन्होंने इनमेंसे एक की भी उपेक्षा की है। उन्हें अवश्य ही जीवनमें कभी न कभी पश्चात्ताप करना पड़ेगा।



शिक्षा और उसका उपयोग

आज कलके प्राय: सभी युवक यदि अधिक नहीं तो स्कूली शिक्षा तो प्राप्त करते ही हैं। कुछ ऐसे भी होते हैं, जिन्हें सौभाग्य या दुर्भाग्यसे कालेजोंमें पढ़नेका अवसर मिल जाता है। 'दुर्भाग्यसे' इसलिये कि एक तो उनकी कालेजकी शिक्षा-प्रणाली ही ऐसी दोषपूर्ण है कि वे ग्रेजुएट होकर यही नहीं जान पाते कि उन्होंने क्या पढ़ा है, और जो कुछ रट-रट कर उन्होंने पढ़ा भी है उसका व्यावहारिक ज्ञान तो वे कभी कुछ सोच ही नहीं पाते। 'सौभाग्यसे' इसलिये कि हजारोंकी संख्यामें प्रतिवर्ष प्रत्येक विश्व-विद्यालयसे पास होने वाले ऐसे ग्रेजुएटोंमें से शायद सौ-पचास ही मुश्किलसे ऐसे मिलेंगे जिन्हें अपनी इच्छा और अभिलाषाके अनुसार कुछ काम करने या

यों कहिये कि कुछ काम सीखनेका अवसर मिले और साथ ही उन्हें जीवन-यापनके लिये कुछ धन भी मिलता रहे। जिन युवकोंके लिये यह परिच्छेद लिखा जा रहा है—वे उपर्युक्त प्रकारके साधन-प्राप्त सौभाग्यशाली युवक नहीं हैं। यहाँ हम उन्हींके सम्बन्धमें कुछ लिखेंगे जिन्हें या तो हाईस्कूल तक ही पढ़नेका मौका मिला है या जो कालेज तक पढ़ कर अपने मनमें दर-असल यह सोचते हैं कि उनकी शिक्षा अधूरी हुई है और क्रियात्मककी कौन कहे, सैद्धान्तिक रूपमें भी उन्हें किसी विषयका ज्ञान सम्यक् रूपेण नहीं हुआ है।

शिक्षाके रूपके सम्बन्धमें कुछ लिखनेके पूर्व यह समझ लेना अधिक उपयोगी होगा कि शिक्षाका उद्देश्य क्या है। यह तो सभी मानेंगे कि शिक्षाका अन्तिम ध्येय सुख-प्राप्ति है, पर उसका प्रकट ध्येय है ज्ञान-प्राप्ति। किन्तु आपको सौ में ६० विद्यार्थी ऐसे मिलेंगे जो अपनी शिक्षाका ध्येय नौकरी तथा अर्थार्जन बतलायेंगे। ज्ञान-प्राप्तिके भी आधुनिक शिक्षा-प्रणालीमें दो रूप हैं—एक सैद्धान्तिक और दूसरा व्यावहारिक। हमारे देशमें व्यावहारिक शिक्षाका एक प्रकारसे अभाव ही है—इसीलिये विज्ञानादि व्यावहारिक विषयों की उच्चतम परीक्षा पास करके भी हमारे विद्यार्थी उसे व्यवहारमें लानेमें कोरे ही रह जाते हैं और विशेष अध्ययन के लिये इङ्गलैण्ड, जर्मनी, फ्रांस, आस्ट्रिया, अमेरिका और जापान आदि देशोंमें जाकर उसकी पूर्ति करते हैं। इसका कारण यह है कि एक तो हमारे देशमें कला-कौशलका विकास नहीं हुआ है, और

दूसरे जो कुछ हुआ है उसमें सुव्यवस्था और संगठनका अभाव है। यही कारण है कि हमारे उच्च शिक्षा-सम्पन्न लड़कोंको कहीं काम नहीं मिलता और वे मारे-मारे फिरते हैं। सरकारी नौकरियाँ थोड़ेसे विद्यार्थियोंको ही मिल सकती हैं, फिर इतने ढेरके ढेर विद्यार्थी इस उद्योग-धन्धेसे हीन खेतिहर देशमें जायँ तो कहाँ जायँ। उनकी शिक्षा और कालेजका जीवन उनमें ऐसे संस्कार तो पैदा नहीं करता कि वे जितने भी साधन मिल सकें, उनका उपयोग करके अपने ज्ञान द्वारा ग्रामोंमें काम करें, इसलिये वे कहींके नहीं रहते। फिर इसका उपाय क्या है? इसका उपाय यही है कि यह नामधारी उच्च शिक्षा बन्द होनी चाहिए और इसमें चार-चार, छः-छः और आठ-आठ वर्ष लगाकर गरीव देशके हजारों रुपये फूंक कर उसमें लगे हुए रुपयेके सूदके बराबर भी वेतन न पा सकनेकी जो अक्ष-मता उनमें उत्पन्न कर दी जाती है, उसका पूर्णतः निषेध होना चाहिए। केवल उन्हीं गिने-चुने विद्यार्थियोंको कालेजकी महँगी और थोथी शिक्षा दी जानी चाहिए, जिन्हें पास फालतू पैसा हो, बर्बाद करनेके लिये पर्याप्त समय हो, और जिन्हें फैशनेबुल जीवन व्यतीत करते हुए केवल यन्त्र-तन्त्रका थोड़ा-बहुत सैद्धान्तिक ज्ञान प्राप्त करना हो।

कालेजकी शिक्षाके इन दोषोंके कारण क्या हैं? इस पर यहाँ विस्तृत रूपसे विचार करना व्यर्थ है; किन्तु चूंकि प्रति वर्ष देशका कितना ही धन इस प्रणालीमें व्यर्थ व्यय हो रहा है, इसलिये इसके सम्बन्धमें कुछ संक्षिप्त रूपमें लिख देना नवयुवकोंके लिये बुरा नहीं

होगा। कालेजकी शिक्षाका सबसे बड़ा और प्रधान दोष यह है कि उसका माध्यम विदेशी भाषा है, और उस भाषामें जो पुस्तकें वहाँ पढ़ाई जाती हैं, उनका विषय समझना तो दूर रहा, उसकी भाषा तक वे नहीं समझ पाते और फलस्वरूप परीक्षामें पास होनेके लिये उन्हें रटना पड़ता है। कालेजके प्रोफेसरोंमेंसे भी अधिकांशका यही हाल है कि उन्हें स्वयं उस विषयका पूर्ण ज्ञान नहीं होता, जिसकी वे शिक्षा देते हैं, इसलिये विद्यार्थियोंको सन्तोषजनक शिक्षा देनेके बदले वे भी अपना औंधा-सीधा लेक्चर झाड़ते हैं—इस अटपट शिक्षा-प्रणालीका फल यह होता है कि नामधारी विशेषज्ञों द्वारा प्रत्येक विषयकी पुस्तकों पर कुंजियाँ और नोट्स लिखे जाते हैं और कितने ही विद्यार्थी उनकी सहायतासे कुछ रट-रटा कर पास होनेकी तैयारी करते हैं। इतनी दिक्कत उठाकर तथा दिमाग पर अनावश्यक बोझ डालकर जो परीक्षा पास की जाती है, उसका परिणाम यदि कुछ सुखद हो तब तो कोई बात भी है—परिणाम तो यह होता है कि पास होकर भी विद्यार्थियोंको दर-दर भटकना पड़ता है और उनके क्लेशका पारावार नहीं रहता। इस पर भी लोग कालेजकी शिक्षा की ओर दौड़कर अपनी मूर्खताका जो प्रदर्शन करते हैं, वह वास्तवमें हास्यास्पद है।

अब प्रश्न यह हो सकता है कि आखिर फिर शिक्षाका क्रम क्या हो और ज्ञान-पिपासु विद्यार्थी क्या करें। इसका उत्तर यही है कि हमारे यहाँके मध्यम श्रेणीके लोगोंके लिये तो यह शिक्षा कौड़ी काम की है नहीं, क्योंकि प्रथम तो बचपनसे ही विदेशियों या विदेशी-

नुमा भारतीयोंमें न रहने-सकनेके कारण वे अंग्रेजी भाषा, अंग्रेज़ी शिष्टाचार, अंग्रेज़ी रहन-सहन और अंग्रेज़ी वस्त्राभूषणको नहीं अपना सकते, दूसरे उन्हें अपने मध्यवित श्रेणीके नौकर या जमींदार-किसानके गाढ़े परिश्रमकी कमायी कालेज रूपी महँगी सामाजिक कुवोंमें नहीं गँवानी चाहिये और कालेजकी शिक्षा सामूहिक शिक्षा न रहने देकर केवल उन्हीं कतिपय भारतीयोंकी सन्तानों पर छोड़ देनी चाहिए जिनकी उच्च सरकारी नौकरियों तक पहुँच है, जो पाश्चात्य शिक्षा-प्रणालीसे रंगे हुए वातावरणमें रहते हैं और जिनके लिये वैसे क्षेत्रमें प्रविष्ट होनेकी सम्भावना है, जो असाधारण रूपसे मेधावी हों और केवल सामाजिक समूहके रूपमें कालेजमें प्रविष्ट हो अपने आप चमकने वाले हों, जिन्हें कोई बढ़ियां छात्र-वृति मिल रही हो या फिर जैसा कि ऊपर कहा गया, जिनके पास खर्च करनेके लिये पर्याप्त धन और खोनेके लिये पर्याप्त समय है। सारांश यह कि जिन्हें अपनी आजीविकाकी चिन्ता करनी हो, जिन्हें अपनी कमाईसे अपने परिवारको सुख पहुँचाना हो और जिनकी आर्थिक और सामाजिक स्थिति मध्यम और निम्न श्रेणीकी हो, वे कालेज की शिक्षा प्राप्त करके पीछे पछताये बिना न रहेंगे, क्योंकि इस शिक्षासे आजीविका तो मिलती नहीं और ज्ञान नाममात्रको प्राप्त होता है—फिर भला ऐसी शिक्षाके लिये घर-बार बेच कर, कर्ज उधार लेकर और अन्य आर्थिक तङ्गी उठाकर कालेजमें प्रविष्ट होना मूर्खता नहीं तो क्या है ?

जिस नामधारी उच्च श्रेणीका वर्णन ऊपर किया गया है, उन्हें

छोड़कर अन्य श्रेणीके युवकोंके लिये अनेक दोषयुक्त होते हुए भी वर्तमान हाई स्कूलकी शिक्षा ही पर्याप्त है। इसके बाद युवकोंको चाहिये कि वे अपनी प्रवृत्तिके अनुसार कोई न कोई काम सीखनेमें लग जायँ। जिन्हें आर्थिक कठिनाईके कारण ज्ञान-प्राप्तिमें सफलता न मिल रही हो और जो वास्तवमें जिज्ञासा रखते हों उन्हें अपने प्रिय विषयकी पुस्तकें चुनकर घर पर ही उसका अध्ययन करना चाहिए। अमेरिकामें मजदूर-पेशा लोगोंके लिये वहाँके एक प्रकाशकने घरेलू विश्वविद्यालय ग्रन्थमाला (Home University Series) प्रकाशित की है, जिसमें कालेजोंमें पढ़ाये जानेवाले प्रत्येक विषयकी पुस्तकें उन विषयोंके ऐसे-ऐसे आचार्यों द्वारा लिखाकर प्रकाशित की गयी हैं, जो उन विषयोंका बीससे चालिस वर्ष तक अध्यापन कर चुके हैं और जो अमेरिकाकी नवीनतम और वैज्ञानिक शिक्षा-प्रणालीके जन्मदाता माने जाते हैं। ये पुस्तकें ऐसी सरल भाषामें लिखी गयी हैं कि हाईस्कूलकी शिक्षा समाप्त कर चुकने वाले विद्यार्थी उनके समझनेमें अधिक कठिनाईका अनुभव नहीं करेंगे, क्योंकि उनमें लाक्षणिक (Technical) शब्दोंका प्रयोग नहीं किया गया है। इन पंक्तियोंके लेखकने साहित्य, इतिहास, प्रयोगात्मक, मनोविज्ञान और समाज-शास्त्रका अध्ययन उन्हीं पुस्तकोंसे किया है और उसका दावा है कि वह उन विषयोंमें वर्तमान भारतीय विश्वविद्यालयोंके औसत विद्यार्थियोंसे कम ज्ञान नहीं रखता।

अब रहा ऐसे विद्यार्थियोंका प्रश्न जो आजिविकाके लिए किसी

विषयका ज्ञान प्राप्त करके शीघ्रातिशीघ्र कुछ आर्थिक सफलता प्राप्त करना चाहते हैं। वर्तमान अवस्थाको देखते हुए बिना पूंजीके युवकों के लिये यह तो सम्भव नहीं है कि वे कोई व्यापार या उद्योग-धन्धा कर सकें—नौकरीके अतिरिक्त केवल कारीगरी और छोटे-मोटे कामोंमें लग जानेमें ही उनका आर्थिक कल्याण हो सकता है। जिन युवकोंको कल-कारखानोंमें घुस कर कुछ काम सीखनेकी सुविधा प्राप्त हो सके वे वैसा करें; पर जिन्हें ऐसी सुविधा नहीं है वे छोटे-मोटे काम अपना लें। अभी तक शिक्षित युवकोंने इन छोटे-मोटे कामोंमें हाथ नहीं डाला है। ये काम हैं—बूट पालिश, बर्तनों पर कलई, साबुन-तैल और अन्य हल्के दामोंकी चीज़ोंकी फेरी करके उन्हें बेचना। निस्सन्देह ऐसा काम करनेमें शिक्षित युवकोंमें कुछ संकोच और लज्जा उत्पन्न होगी; पर इससे हाथसे काम करनेका गौरव बढ़ेगा और इस प्रकार शिक्षितों द्वारा यह कार्य होते देख लोग उनसे काम करवाने और सौदा लेनेमें तरजीह भी देंगे। इस प्रकारके काम करनेमें थोड़ा साहसका काम अवश्य है; पर इसका परिणाम आशाजनक होगा, इसमें सन्देह नहीं।



स्वास्थ्य और व्यायाम

शरीरके सुविकासकी अवस्थामें यह आवश्यक ही नहीं अनिवार्य होना चाहिये कि प्रत्येक युवक अपनी शारीरिक शक्तिके अनुसार व्यायाम करे। आज कल बहुतेरे युवक यह कह कर व्यायामसे पिण्ड छुड़ाते हैं कि उन्हें उसके लिये समय नहीं मिलता या आलस्यवश वे उस ओर ध्यान नहीं देते हैं। इसमें पहली बात तो बिलकुल गलत है, क्योंकि चौबीस घण्टे में केवल आधा घण्टा व्यायामके लिये न निकाल सकना व्यायाम न करनेका बहाना मात्र है। जिस शरीर पर संसारके सारे दुःख-सुख निर्भर हैं उसके स्वस्थ रखनेके लिये थोड़ा सा व्यायाम भी न करना, कितने दुःखकी बात है। यद्यपि युवावस्थामें बहुतोंको व्यायाम न करने पर भी शारीरिक ह्रास

मालूम नहीं होता, परन्तु व्यायाम न करने वालोंका शरीर प्रौढ़ावस्थामें बेडौल और भद्दा होकर बलहीन हो जाता है।

व्यायामसे जहाँ शारीरिक स्वास्थ्यका लाभ है, वहाँ इससे मानसिक स्वास्थ्य पर भी प्रबल प्रभाव सिद्ध हो चुका है। नियमपूर्वक व्यायाम करने वाले व्यक्तिका मन अधिक चञ्चल नहीं होता और उनमें इन्द्रिय-निग्रहकी प्रवृत्ति स्वाभाविकतया उत्पन्न हो जाती है जो युवावस्थामें स्वास्थ्यकी कुंजी है। व्यायाम करने वाले युवक शीघ्र ही बीमार नहीं पड़ते, सर्दी-गर्मी का प्रभाव उन पर कम पड़ता है, क्योंकि उनकी सहन शक्ति बढ़ जाती है। यह कहनेकी तो आवश्यकता ही नहीं है कि व्यायामके विना शारीरिक सौष्ठव और सुडौलपन यथेष्ट रूपमें आ ही नहीं सकता। कसरती लोगों को अजीर्ण बदहजमीका रोग कभी नहीं होता और बदहजमी सारे रोगोंकी माता है। पूर्णतः रक्त-प्रवाह होने और स्वेद-रंध्र खुले रहनेके कारण चर्म रोग भी कसरतीके पास नहीं फटकते। व्यायाम करते समय मुक्त श्वांस लेनेके कारण श्वांस नलिका और फेफड़े ऐसे स्वच्छ रहते हैं कि खाँसी आदिसे लेकर आज कलके क्षय आदि तक कोई भी रोग पास नहीं आता। प्राचीन भारतमें व्यायामकी प्रथा इतनी अधिक प्रचलित थी कि गांव-गांवमें मल्ल शालाएं और अखाड़े खुले रहते थे और किशोरावस्थासे ही लड़कोंमें व्यायामकी आदत डाल दी जाती थी। मल्ल-युद्धकी प्रति स्पर्द्धा बड़े-बड़े राज-दरबारोंमें होती थी और सुन्दर शारीरिक कौशल दिखलाने वालोंको बड़े-बड़े पुरस्कार मिलते थे। इस कलाको प्रोत्साहन इसलिये दिया जाता था कि इस पर

सारे राष्ट्र और सारे समाज का स्वास्थ्य निर्भर करता था। अब भी बड़ोदा आदि कई राज्योंमें व्यायामको पर्याप्त प्रोत्साहन दिया जा रहा है। बड़ोदेकी जुम्मा दादा व्यायामशाला भारतमें अद्वितीय संस्था है और उसके संचालक प्रोफेसर मानिक राव व्यायाम-प्रचारकी वैज्ञानिक प्रणाली काममें ला रहे हैं। यदि भारतके अन्य राजे-महाराजे इसका अनुकरण करें, तो राष्ट्रका बड़ा कल्याण हो सकता है। संसारके राष्ट्रोंमें इस समय व्यायाममें जर्मनी सर्वश्रेष्ठ माना जाता है, यही कारण है कि जर्मनीके स्त्री-पुरुषोंका कद, स्वास्थ्य और बल संसारके अन्य सभी राष्ट्रोंसे उच्च है। हम प्रत्यक्ष देख रहे हैं कि उत्तम खाद्य और व्यायामके अभावसे हमारी प्रत्येक पीढ़ी पहलेकी अपेक्षा शारीरिक कद और बल दोनों ही में क्षीण होती जा रही है और यदि यही क्रम रहा तो अनेक पीढ़ियां बाद पांच फीट का भी आदमी खोजने पर न मिलेगा। खाद्य-पदार्थकी कमी तो सामूहिक रूपसे दूर की जा नहीं सकती, क्योंकि हम राजनीतिक दृष्टिसे परतन्त्र हैं, पर जिन्हें खाद्य-पदार्थ पर्याप्त मिलता है, हमारे यहां वे भी व्यायाम पर ध्यान नहीं देते—अतः कमसे कम ऐसे व्यक्तियोंको तो अवश्य ही संसारके सामने यह आदर्श रखना चाहिये कि व्यायाम पर स्वास्थ्य-सुधार कितनी अधिक मात्रामें निर्भर है।

अब हमें व्यायामके भेदोंपर विचार करना चाहिए। किस प्रकारका व्यायाम हमारे शिक्षित युवकोंके लिये अधिक उपयोगी होगा तथा किसमें थोड़ेसे थोड़ा समय लगाकर सारे शरीर पर पूरा बल डाला जा सकता है, यह जान लेनेपर उसका अभ्यास सरलता-

पूर्वक किया जा सकेगा। साथ ही स्वप्नदोषादिसे भी विना औषधि आदिके सहज ही त्राण मिल जायगा। यहाँ केवल ऐसे ही व्यायाम दिये गये हैं, जिनका अभ्यास इन पंक्तियोंके लेखकने स्वयं किया है और उनसे इतना अधिक लाभान्वित हुआ है कि जिसका वर्णन यहां स्थान संकोचके कारण हो नहीं सकता। साधारणतः बदहज़मी, मलवद्धता और स्वप्नदोष—जिनके शिकार आजकलके शिक्षित नवयुवकोंमें ८० प्रतिशत होते हैं—में तो केवल पन्द्रह दिनके अभ्याससे आश्चर्यजनक लाभ दिखायी देगा। इन व्यायामोंमें कुछ खर्च नहीं करना पड़ता, न इनके लिये लम्बे-चौड़े मैदानकी ही जरूरत पड़ती है, इसलिये इनके करनेमें किसी विशेप तैयारीकी जरूरत नहीं पड़ती।

आसन-व्यायाम

स्वास्थ्य तथा ब्रह्मचर्य कायम रखनेके लिये जो आसन श्रीपाद-दामोदर सातवलेकर जी की कृपासे सारे देशमें विख्यात हो गये हैं, उनका संक्षिप्त वर्णन यहाँ दिया जाता है:—

(१) **शीर्षासन**—मुलायम कपड़ेको लपेट कर बींड़ा या फेटा-सा बनाकर रक्खे और उसपर सिर रखकर हाथोंका टेकाले, धीरे-धीरे पाँव ऊपर उठाये। आरम्भमें ऐसा न कर सके तो दीवारका सहारा ले ले या किसी मित्रसे कहे कि वह पैर पकड़ कर ऊपर उठाये रहे और धीरे-धीरे उसे थोड़ी देरको छोड़ दे। इस प्रकार १०-५ बारमें अभ्यासके बाद नवसिखुवे भी इसे कर लेंगे और बादमें अपने आप पैर ऊपर उठानेमें समर्थ हो जायेंगे। इस प्रकारका

आसन शुरूमें १-२ मिनटसे अधिक नहीं करना चाहिये। पश्चात् अभ्यास हो जानेपर भी १०-१५ मिनटसे अधिक नहीं करना चाहिये। इससे नेत्रोंकी कमजोरी, अनिद्रा, अजीर्ण, मस्तकपीड़ादि वीर्यरोग दो-एक मासमें अवश्य ही दूर हो जायँगे, और अल्प-वयमें पकनेवाले बाल भी काले होने लग जायँगे।

(२) **सिंहासन**—बायें पैरको दाहिनी जाँघके नीचेसे दाहिनी ओर और दाहिने पैरको बायीं ओर मोड़कर बैठ जाइये। दोनों हाथ फैलाकर घुटने पर रखिये। इसमें मुँह खोलकर जिह्वाको पूरी लम्बाईके साथ बाहर निकालना और दृष्टिको नासिकाके अग्रभाग पर स्थिर कर देना चाहिये।

(३) **पद्मासन**—सीधे बैठ कर दाहिने पैरको बायीं जाँघ पर और बायेंको दाहिनी जाँघपर रख लेना चाहिये। ऐसा करनेमें पहले तो कठिनाई अवश्य होगी। पर थोड़े अभ्याससे बादमें उसमें सरलता हो जायगी। जब ऐसा सरलतासे होने लगे तो दाहिने हाथको पीठ पीछेसे लाकर उससे दाहिने पैरका अँगूठा पकड़िए, इसी प्रकार बायें हाथसे बायें पैरका अँगूठा पकड़ लीजिए। इस प्रकार पाँच मिनट तक बैठे रहनेका अभ्यास कर लेना चाहिए।

(४) **वीरासन**—दोनों घुटनोंको एक दूसरेपर रखकर दोनों पैर पीछे निकाल कर बैठना चाहिए। घुटनोंके सिरे दोनों हाथोंको पीछेकी ओर भी जमीन पर टेक रखना चाहिये। इस प्रकार बीसों मिनट तक करना चाहिए।

रक्षाका आदर्श रक्खा है। उन्होंने स्वास्थ्य रक्षाके लिये लाखों डालर खर्च करके संस्थाएँ कायम कीं जिनसे अमेरिकन जनता बहुत लाभ उठा रही है। भारतमें अभी अमीरोंकी प्रवृत्ति इधर नहीं गयी है कि वे स्वास्थ्य रक्षाके लिये बढ़िया-बढ़िया खेलोंका प्रचार करनेके लिये प्रचुर धन लगाकर ऐसी संस्थाएँ खोलें जिनसे सारे राष्ट्रके स्वास्थ्यपर प्रभाव पड़े। जर्मनी और रूसकी सरकारने तो अपने देशके स्त्री-पुरुष दोनोंहीके व्यायामके लिये समुचित व्यवस्था करदी है और इसके लिये उपर्युक्त देशोंकी सरकारें अपने बजटमेंसे काफ़ी धन ख़र्च करती हैं।

यहाँ व्यायाम पर एक और अमेरिकन सज्जनके आश्चर्यजनक आदर्शका उल्लेख करके हम इस परिच्छेदको समाप्त करेंगे। इन सज्जनका नाम है सैनफोर्ड वैनेट। इन्होंने पचास वर्षकी अवस्थामें बिस्तरेपर लेटे-लेटे व्यायाम करनेकी नवीन प्रणाली निकाल कर अपने स्वास्थ्यमें ऐसा चमत्कारपूर्ण परिवर्तन कर लिया कि देखनेवाले उन्हें पहचान नहीं पाते थे कि वह वही मि० वैनेट हैं या कोई दूसरे। अब बहत्तर वर्षकी अवस्थामें वह पचास वर्षकी अवस्थाकी अपेक्षा कहीं अधिक स्वस्थ और अल्पायु मालूम होते हैं। इनकी दोनों (पचास और बहत्तर वर्षकी) अवस्थाओंके फोटो देखकर हमें आश्चर्यसागरमें गोते लगाना पड़ता है। इनका दावा है कि यदि इनकी प्रणाली काममें लायी जाय तो युवक वृद्धावस्थाको इस रूपमें प्राप्त ही नहीं हो सकते जैसा अभी होते हैं और वृद्धोंको भी बुढ़ापेका कष्ट इस रूपमें नहीं उठाना पड़े जैसा अब उठाना पड़ता है।

सैनफोर्डबैनेट महोदयने अपने अनुभवोंके आधारपर "Old Age its causes and prevention" ※ (वृद्धावस्था—उसके कारण और रोकनेके उपाय) नामक पुस्तक अंग्रेजीमें लिखी है, जिसमें उनके चमत्कारपूर्ण स्वास्थ्य-परिवर्तन और बिस्तरेपर लेटे-लेटे की जाने-वाली कसरतोंका मनोरंजक और वैज्ञानिक वर्णन सरल भाषामें किया है। जो पाठक अंग्रेजी भाषाका पर्याप्त ज्ञान और २० शिलिंग खर्च करनेकी क्षमता रखते हों, वे उक्त पुस्तकको अवश्य पढ़ें और पढ़कर उन व्यायामोंका अभ्यास करें जिनका उसमें वर्णन है।



※इस पुस्तकका हिन्दी अनुवाद भी कलकत्तेके किसी प्रकाशकने 'काया कल्प' नामसे प्रकाशित किया है।

ब्रह्मचर्य

ब्रह्मचर्यका अर्थ यद्यपि बहुत व्यापक है और उसकी पूर्ण साधना साधारण कोटिके मनुष्यके लिये कष्ट साध्य है; किन्तु आज-कलके प्रचलित साधारण अर्थमें ब्रह्मचर्यका जो आशय समझा जाता है, हम यहाँ केवल उसीपर विचार करना चाहते हैं। साधारणतः यह कहनेमें आता है कि काम-वासनाको संयम-पूर्वक रोक कर एक गृहस्थ भी ब्रह्मचर्यका पालन करता, या कमसे कम कर सकता, है। कठोर अर्थमें ब्रह्मचर्यका अभिप्राय तो यहांतक है कि स्त्रियोंका दर्शन ही नहीं स्मरण तक न किया जाय; किन्तु आजकल वनवासियोंके लिये भी स्त्री-दर्शनसे बचना सम्भव नहीं है—और सच बात तो यह है कि इस जमानेमें स्त्री-दर्शन आदिसे बचनेकी अपेक्षा, परिवारमें

जहाँ अपनी स्त्री न होते हुए भी अन्य स्त्रियां होती ही हैं, रहकर भी आत्म-दमन करनेवालोंको ही हम ब्रह्मचारी कहते हैं, या कमसे कम कहना चाहिये। जो पुरुष अपनी स्त्रीके साथ रहता हुआ भी इस प्रकार संयम-पालनमें सक्षम है, वही वास्तविक युवक और ब्रह्मचारी है। आजकलके युवकोंमें पाश्चात्य शिक्षा और रहन-सहनके संसर्गसे कामुकता बढ़ती जा रही है और बहुत-से युवक तो पशु-पक्षियोंसे भी गये—बीते हैं, क्योंकि पशु-आदि तो सालमें एक बार अपने केलि-काल पर ही मैथुन करते हैं और मादाके गर्भ धारण कर लेनेके बाद प्रथम तो नर उसके पास सहवासके लिये जाता ही नहीं और यदि जाता भी है तो मादाही उसे उचित दण्ड देनेको तैयार हो जाती है। मनुष्य जातिका यह घोर पतन कितना दुःखजनक है। इस प्रकारकी अतिशय कामुकताका कुपरिणाम न केवल स्त्री-पुरुषके स्वास्थ्यपर पड़ता है, प्रत्युत उनकी सन्तान भी वैसी ही दुर्बलेन्द्रिय विकलांग और मृतप्राय-सी होकर जीवन व्यतीत करती है। स्त्री-पुरुषके सहयोगका निश्चित काल तो होना ही चाहिये—साथ ही जिस दिनसे स्त्री गर्भ धारण करे तबसे बच्चा पैदा होने तक ही नहीं वरन् जबतक बच्चा दूध पीना न छोड़ दे, स्त्री-सम्भोग नहीं करना चाहिए, क्योंकि जब तक बच्चा छोटा होता है तबतक स्त्री-सम्भोग करनेपर उसका दूध खराब हो जाता है जिसका असर बच्चेके स्वास्थ्यपर बुरा पड़ता है। इसलिये कमसे कम जबतक बच्चेको दाँत न निकल आयें स्त्रीके पास नहीं जाना चाहिये।

अब प्रश्न यह उठ सकता है कि इस प्रकारका आत्म-संयम किया

किस प्रकार जा सकता है ? इसके अनुकूल मनोवृत्ति बनानेके लिये एक तो भोजन सादा—निरामिष होना चाहिये, दूसरे प्राणायाम और व्यायाम द्वारा मनो-निग्रह करना चाहिये। धार्मिक—विशेषतः दार्शनिक विषयोंके अध्ययनमें भी थोड़ा समय लगाना चाहिये। कामोत्तेजक बातों और प्रसंगोंसे बचते रहना चाहिये और जहाँ तक सम्भव है, सम्भोग-विषयक बातोंको सोचनेका अवसर ही मनको नहीं देना चाहिये। इसका सबसे सहज उपाय यह है कि आप जो काम करते हों उसमें अपनेको इतना तल्लीन करदें कि इस प्रकारकी बातें सोचनेका आपको अवकाश ही न मिले, क्योंकि प्रायः इस प्रकारकी बातें निठल्ले बैठनेपर ही अधिक याद आती हैं। दूसरा उपाय है अपनेसे श्रेष्ठ गुरुजनोंकी संगति और प्रभावमें रहना।

चित्तको चंचल होनेसे रोकनेके लिये प्राणायाम वैज्ञानिक दृष्टिसे अभूतपूर्व उपाय सिद्ध हुआ है, इसलिये जो मनकी चंचलता रोकना चाहें उन्हें यह अभ्यास नित्य प्रातः-सायं या कमसे कम एकबार दस मिनट खर्च करके अवश्य करना चाहिये।

विधि—प्रणायामकी सरलतम विधि इस प्रकार है। दाहिने हाथके अँगूठे और अनामिका उँगलीसे नासिकाको इस प्रकार पकड़िये कि दोनों छिद्र मुंद जायँ। अब अनामिका उठाकर बायें नासिका-रंध्रसे धीरे-धीरे साँस खींचकर भर लीजिये इसे पूरक कहते हैं। अब अनामिकासे खुला हुआ नासिका-छिद्र बन्द कर लीजिये और उसके चौगुने समय तक दोनों छिद्र बन्द करके स्थिर बैठे रहिये—इसे कुम्भक कहते हैं। फिर धीरे-धीरे दाहिने छिद्रसे

साँस बाहर निकाल दीजिये साँस निकालनेको रेचक कहते हैं, इसमें पूरकका दुगना समय लगना चाहिये जैसे यदि पूरक १६ गिनने तक करें तो कुम्भक ६४ और रेचक ३२ गिनने तक इसी प्रकार दाहिने छिद्रसे वायु खींचकर भरिये और फिर बन्द रखकर बाँयें छिद्रसे छोड़ दीजिये—इस प्रकार कमसे कम तीन बार कीजिए।

केवल इतने ही प्राणायामका अभ्यास एक गृहस्थके लिये आवश्यक है। यद्यपि यह विषय इतना गम्भीर है और इसकी सीढ़ियाँ इतनी हैं कि वास्तविक जिज्ञासु और शिक्षार्थीके लिये इसकी शाखाएँ-प्रशाखाएँ बढ़ती ही जाती हैं और इनके द्वारा चित्तकी वृत्तियोंका निरोध होकर मनुष्य योगी बन जाता है, किन्तु ऐसे पुरुष के लिये जो संसारमें विवाह करके स्त्री-बच्चोंमें रहना चाहता है वे सब सोपान वाञ्छनीय नहीं हैं क्योंकि गृहस्थ पुरुषके लिये ब्रह्मचर्य भी एक विशेष सीमा तक ही पालनीय होता है।

जिस पुरुषका आहारादि ठीक समयपर उचित मात्रामें होता है और जो अपने आचार-व्यवहारकी लगाम अपने हाथमें रखता है कोई कारण नहीं है कि ऐसा आदमी एक सद्गृहस्थ होता हुआ आवश्यक ब्रह्मचर्यका पालन न कर सके। मानस शास्त्रका यह सिद्धान्त है कि जिस विषयको जितना अपालनीय और दुर्धर्ष समझा जाता है, वह वास्तवमें वैसा ही हो जाता है, इसलिये यदि हम ब्रह्मचर्य अर्थात् सदाचार-पालनको सहज साध्य समझ कर तदनुसार कार्य करें तो कोई कारण नहीं है कि हम उससे विचलित हों। जीवनमें ब्रह्मचर्य-पालनमें बाधा डालनेवाली और भी अनेक बातें हैं, जिनपर

विचार करके समुचित उपायोंका अवलम्बन करना आवश्यक है। ये बाधाएँ ऐसी नहीं हैं जो थोड़ेसे विचारपूर्ण व्यवहारसे दूर न की जा सकें।

आप अपने भोजनके सम्बन्धमें अत्यन्त सावधानीसे काम लें। (क) भोजन अल्पमात्रामें करें, (ख) चाय, काफी, कहवा, शराब आदि उत्तेजक पेय न पियें, (ग) गुह्येन्द्रियोंको ठंडे जलसे दिनमें दो बार धोयें, (घ) रात्रिको देरसे भोजन न करें, (ङ) कामोत्तेजक पुस्तकें न पढ़े, (च) सुन्दरी स्त्रियोंके चित्र न देखें, (छ) किसी भी स्त्रीके साथ एकान्तवास न करें, (ज) मनको एकाग्र करनेके लिये सदा सयत्न रहें।

वीर्यरक्षाके जो सुपरिणाम होते हैं, उनसे कोई इनकार नहीं कर सकता। वीर्यरक्षाके प्रतापसे ही हनुमान और भीष्मका नाम इतिहासमें अमर हो गया। ब्रह्मचर्यव्रतके खण्डनके कारण ही अभिमन्यु, पृथ्वीराज और नेपोलियनको असफलताका सामना करना पड़ा। अधिक बतानेकी आवश्यकता नहीं—हिन्दुओंके धर्म ग्रन्थ और इतिहास इस बातके साक्षी हैं कि जिस किसीने वीर्यरक्षाका व्रत लिया उसने संसारमें महान् कार्य कर दिखाया। ऐसी अवस्थामें जिस किसी युवकको वास्तवमें ब्रह्मचर्यका पालन करना हो वह निम्न बातोंका विशेष ध्यान रखें:—

(१) तम्बाकू किसी भी रूपमें खायें, पियें या सूंघे नहीं।

(२) किसी भी तरहकी नशेकी चीजें जैसे शराब, भाँग, गाँजा, चरस, आदिका सेवन न करें।

(३) मसाला तथा सड़ी गली चीजोंका सेवन न करें।

(४) माँस, अण्डा, मछली और इस प्रकारके अन्य पदार्थोंका सेवन न करें।

(५) तँग पोशाक न पहनें। यथासम्भव ढीले वस्त्र ही पहनें।

(६) मन और शरीरको सुस्त न होने दें।

(७) कामुक लोगोंकी सङ्गसे बचते रहें।

(८) मनको दृढ़ रखें।

(९) शरीरको स्वच्छ रखें।

(१०) दवाइयोंके सेवनसे यथासम्भव बचते रहें।

(११) कठवैद्योंसे बचते रहें।

(१२) खट्टे, कड़वे और तेलमें बने पदार्थोंका सेवन यथासम्भव कम करें।

(१३) भोजनके बीचमें और कोई चीज खाकर पाचन-शक्तिको न बिगाड़ें।

(१४) यथासम्भव फलोंका व्यवहार करें।

तन्दुरुस्ती, सदाचार और सुखकी इच्छा हो तो ब्रह्मचर्यका पालन अत्यावश्यक है। ब्रह्मचर्यके बिना पवित्रता और स्वच्छता असम्भव है। स्वास्थ्य-सुधार और आत्मोन्नतिके लिये हिन्दू-समाजमें अनेक व्रत और त्यौहार प्रचलित हैं। आजकलके युवक उनकी चर्चा-मात्रसे नाक-भौं सिकोड़ते हैं, किन्तु वे इन व्रतों और त्यौहारोंके मौलिक रहस्यको नहीं समझते। व्रतोंके रखनेसे शरीर स्वस्थ रहता है और पाचन-क्रिया नहीं बिगड़ती। सप्ताह अथवा पक्षमें एकबार

(७) रहनेके लिये स्वच्छ, हवादार और प्रकाशयुक्त कमरा होना चाहिए।

(८) विवाहित पति-पत्नी अलग-अलग शैय्या पर सोयें।

(९) प्रातःकाल स्नानके समय लिंगेन्द्रियका ऊपरका चमड़ा हटाकर उसपर जलकी पतली धार डालें। इससे इन्द्रिय स्वच्छ रहती है और नसोंमें उत्तेजना कम होती है।

(१०) प्रातःकाल शीघ्र उठनेके लिये रात्रिको जल्दी (१० बजे तक) सो जायँ।

(११) यथासम्भव खुली जगह और धूपमें कुछ देर टहलें।

(१२) दिन-रात जब तक जागते रहें, मनको किसी न किसी कार्यमें लगा रक्खें। खाली बैठकर व्यर्थके ख़याली पुलाव न पकायें।

(१३) कमसे कम ३ मील नित्य अवश्य चल फिर लें।

(१४) मानसिक शक्तिको दृढ़ बनानेके लिये नित्य १० मिनट यह सोचें कि मेरा शरीर स्वस्थ है और मैं दिन-पर-दिन हर प्रकारसे उन्नति कर रहा हूँ। निराशाको पास न फटकने दें।

(१५) सायंकाल धार्मिक और दार्शनिक विषयोंका अध्ययन करें।

उपर्युक्त नियमोंका मनसे पालन करनेवाला ब्रह्मचर्य-व्रत पालन करनेमें सफल हो सकता है और वीर्यक्षयसे बचे रहनेके कारण उसके शरीरकी कान्ति, ओर और सहन-शक्ति बढ़ सकती है।



वीर्य-सम्बन्धी रोग

प्रायः किशोरावस्थामें कुसङ्गतिमें पड़कर या समुचित शिक्षा-दीक्षा और देख-रेखके अभावमें बहुत-से युवकोंको वीर्य-नाश सम्बन्धी ख़राब आदतें पड़ जाती हैं। यद्यपि साधारण अवस्थामें ये आदतें दूर नहीं हो सकतीं, किन्तु जिन्हें अपने जीवनका कुछ भी ख़याल है और जो संसारमें विवाह करके पति और गृहस्थ बननेकी इच्छा रखते हैं, उनका यह कर्त्तव्य है कि जब तक वे अपनी आदतें न सुधार लें, तब तक विवाह करके एक अबोध लड़कीका भी जीवन नष्ट करनेकी योजना न करें। उनका कर्त्तव्य यह है कि सबसे पहले वे अपने स्वास्थ्यको सुधारें, क्योंकि जब तक कोई युवक हस्तमैथुनादिका शिकार बना हुआ है, तबतक उसे अपनेको

स्वस्थ समझनेका कोई अधिकार नहीं है। इसी प्रकार जिन्हें स्वप्न-दोष अधिक होता है और जो प्रमेहादिसे पीड़ित हैं, उन्हें पहले इनसे छुटकारा पानेकी चेष्टा करनी चाहिये।

इसमें सन्देह नहीं कि साधारणतः स्वप्नदोष और धातुपतन आदि हल्के रूपमें होंगे तो वे सादे आहार, खटाई, मिठाई, तैल और लाल मिर्चा आदिके त्याग तथा पूर्व परिच्छेदमें लिखित आसन व्यायाम और प्राणायाम आदिसे अवश्य दूर हो जायँगे; किन्तु जिनकी अवस्था अधिक भयंकर हो गयी हो उन्हें किसी योग्य वैद्य या डाक्टरकी शरण लेनी ही पड़ेगी, क्योंकि जो धातु-पतन या निरन्तर स्वप्नदोषसे अत्यन्त दुर्बल हो गये होंगे उनके लिये आसन व्यायाम उलटे हानिकारक सिद्ध होंगे—दुर्बल शरीर इन कसरतोंको सहन नहीं कर सकेगा। जब तक इस प्रकारके रोग अधिक प्रबल न हो जायँ तब तक आसन, व्यायाम, प्राणायाम तथा परहेज़के साथ आहार इनकी जड़ उखाड़नेके लिये पर्याप्त हैं, किन्तु इनके अधिक प्रबल हो जानेकी अवस्थामें पहले चिकित्सा द्वारा उनका बल घटाना चाहिये और फिर कुछ बल प्राप्त करलेनेपर रोगीको चाहिए कि वह नियमितरूपसे स्वबलानुसार आसन, व्यायाम और प्राणायामका अभ्यास करे।

जवानीके जोशमें अन्धे होकर परिणामों पर विचार किये बिना बहुत-से युवक विवाहके पूर्व या विवाह हो जाने पर भी वेश्याओंके पंजेमें फँस जाते हैं, और पीछे उनकी जो दुर्दशा होती है वह वर्णनातीत है। वेश्याएँ भयंकर रोगोंकी भण्डार होती हैं और उनका

संसर्ग करके युवकगण ऐसी बीमारियोंके शिकार हो जाते हैं जो न केवल उनके ही जीवनका नाश कर देती हैं, प्रत्युत विवाहित होने की अवस्थामें उनकी स्त्री और सन्तानोंको भी पीढ़ी दर-पीढ़ी पर कष्ट देती जाती हैं। वेश्याके दिये हुए इस प्रकारके दो महाप्रसादोंमें गर्मी और सूज़ाक मुख्य हैं। ये ऐसे रोग हैं जिनकी अचूक औषधि-विज्ञान की इतनी उन्नति हो जाने पर भी अभी तक नहीं निकल सकी। कुछ ऐसे रोगी, जिनका रोग अपेक्षाकृत कम भयंकर होता है और जो लज्जा संकोचमें न पड़कर शीघ्रातिशीघ्र इन रोगोंके विशेषज्ञोंसे चिकित्सा करा लेते हैं, इन महाभयंकर रोगोंसे शायद पिण्ड छुड़ा सकें अन्यथा इनको जड़ उखाड़ना कठिन ही है। इस-लिये प्रत्येक युवकको इस विषयमें सदा सतर्क रहना चाहिये कि वह वेश्याओं और सन्दिग्ध, भ्रष्टा स्त्रियोंसे सदा बचते रहें और यथा-सम्भव व्यभिचारसे बचते रहें, क्योंकि वासनामें जो युवक फँस जाता है उसका जीवन सुखी नहीं हो सकता—एक न एक दिन वह इन रोगोंका शिकार बनेगा ही और इन रोगोंके चंगुलमें फँसकर वह संसारमें किसी कार्यका नहीं रह जाता। सभी उससे घृणा करने लगते हैं और वह जहाँ कहीं बैठता है, लोग उसके शीघ्रसे शीघ्र वहाँसे हट जानेकी इच्छा करने लगते हैं।

जिन युवकोंको गर्मी और सूज़ाक आदिकी बीमारी हो गयी हो, उनके लिये संयम नियम विशेष लाभ नहीं पहुँचा सकते, क्योंकि इस प्रकारके रोग दूषित स्त्रियोंके साथ व्यभिचार करनेके फल-स्वरूप होते हैं और इनके होनेके मूल कारण ऐसे छोटे-छोटे रोगाणु हैं जो

इन्द्रियके रास्ते शरीरमें प्रविष्ट हो जाते हैं और जिन्हें विशेष चिकित्सा किये बिना नहीं मारा जा सकता है। प्रायः यह देखा गया है कि गर्मीका रोग भयंकर होने पर साल दो साल लगातार इस रोगके विशेषज्ञ वैद्य या डाक्टरसे चिकित्सा कराने पर ही आराम होता है, और सूज़ाकका रोग तो प्रायः जन्म भर अच्छा ही नहीं होता, इसलिये इन रोगोंके शिकार युवकोंका तो नैतिक दृष्टिसे यही कर्त्तव्य है कि वह विवाह करके एक दूसरे प्राणीका जीवन नष्ट न करें। ऐसे रोगोंके रोगी—यदि स्त्री-पुरुषमें से कोई भी हुआ—तो जो सन्तान होती है प्रायः देखनेमें आता है कि उस पर भी इस रोगकी छाप होती है, इसलिये इन रोगोंसे पीड़ित युवकको चाहिये कि पहले लगातार चिकित्सा करा कर अपनी डाक्टरी परीक्षा करायें और जब डाक्टर यह प्रमाणित कर दे कि अब उनके शरीरमें रोगाणु शेष नहीं है, तब विवाहादि करने और गृहस्थ बननेका नाम लें।

इन रोगोंके अतिरिक्त किसी-किसी युवकको स्वप्नदोष और मधु-मेहकी भी शिकायत हो जाती है; किन्तु यह रोग साधारणतः आहार-विहारमें समुचित परिवर्तन करने और व्यायाम-प्राणायाम का अभ्यास करने पर दूर हो जाते हैं, क्योंकि इनकी उत्पत्ति प्रायः आहार-विहारकी खराबी से ही होती है। इनके लिये अधिक चिन्ता नहीं करनी चाहिये, क्योंकि जिस तरह आहार-विहारके दूषित और मनोवृत्तिके चंचल हो जाने पर मासमें दो-एक बार स्वप्नदोष हो जाना किसी भी युवकके लिये अधिक चिन्ताका कारण नहीं होना चाहिये उसी तरह साधारण अवस्थामें मधुमेहादि हो जाने पर भी

युवकोंको चिन्तित न होकर सादे भोजन और प्राणायाम, व्यायामका अभ्यास करना चाहिये। इनसे यदि महीने-पन्द्रह दिनमें कोई लाभ न हो तो किसी सद्वैद्य या सुयोग्य डाक्टरकी शरण लेनी चाहिये।

प्रमेहका वर्णन करते हुए जल-चिकित्साका नाम न लेना अन्याय होगा, क्योंकि इस स्वाभाविक उपचारसे भी लेखकने दर्जनों पीड़ितों को स्वास्थ्य-लाभ करते देखा है। यह प्रणाली बिल्कुल सरल है। नहानेके लिये एक बड़े टबमें ठण्डा जल भर कर उसमें बैठ जाइये। जल बैठने पर नाभिके ऊपर तक होना चाहिये। फिर एक स्वच्छ और मोटे अंगोछे से पेड़ू को धीरे-धीरे घिसना चाहिये—यह क्रिया १५ मिनटसे आधे घण्टे तक नित्य सुबह शाम करनी चाहिये। इस क्रियाके करने वाले प्रायः या तो फलाहार करते हैं, या दलियाका सेवन करके दिन व्यतीत करते हैं। बहुत-से लोग केवल दूध या दलिया और दूधका संयुक्त सेवन करके भी लाभान्वित हुए हैं। इस उपचारसे स्वप्नदोष, धातु पतन और मधुमेहमें पूरा लाभ होते देखा गया है, क्योंकि इसमें बदहज़मी आदि तो रह ही नहीं सकती—फल और दलियाके सेवनसे मल-निष्कासन समुचित रूपसे होता है। स्नानके बाद बलानुसार मील-आध मील टहलनेका विधान भी इस चिकित्साका एक अंग है।*

---

* जल-चिकित्सा वीर्य-रोगों पर ही नहीं, प्रायः संसारके सभी रोगों पर अप्रतिम गुण दिखला चुकी है। जिन्हें इस विषयमें विशेष जानकारी प्राप्त करनेकी इच्छा हो, वह 'कलकत्ता पुस्तक भण्डार' से 'जल-चिकित्सा' मंगाकर पढ़ें।

उस घटनाका उल्लेख कर देना अनुचित उदाहरण नहीं होगा, जब पढ़नेके लिये स्कूलकी गोरी अध्यापिकाके पास जाने पर उन्होंने पहले यह कहा कि अच्छा जरा इस कमरेमें झाड़ू तो लगा दो। अध्यापिकाका इतना ही कहना पर्याप्त हुआ और वे उठ कर कमरेमें से बाहर चली गयीं। बालक वाशिंगटनने तुरन्त झाड़ू लेकर उस कमरेको ऐसी सुन्दरतासे साफ किया कि वैसा उसके पूर्व वह कभी भी नहीं हुआ था। मेज, कुर्सी और आलमारी आदि झाड़-पोंछ कर, इधर-उधर पड़ी हुई पुस्तकोंको मेजके कोने पर एक जगह लगा दिया। दरवाजे और खिड़कीके शीशे तक साफ कर दिये और यह सब काम करनेमें उसे केवल दस मिनट लगे। अध्यापिकाने लौट कर कमरेको देखा और मेजको अपने रूमालसे पोंछ कर देखा तो उसमें मैल या गर्दका नाम नहीं था। चारों तरफ कमरेका निरीक्षण करनेके बाद अध्यापिकाने कहा कि तुम वास्तवमें पढ़ोगे और उस निग्रो बालकको प्रसन्नता पूर्वक स्कूलमें भर्ती कर लिया। यही बालक आगे चलकर बुकर टी० वाशिंगटन नामसे विख्यात हुआ और इसीने अमेरिकाके महान्ध गोरोंके दुर्व्यवहारके विरुद्ध निग्रो जातिका नेतृत्व ग्रहण करके उन्हें मनुष्यताकी श्रेणीमें ला खड़ा किया। इस दृष्टान्तका आशय यह है कि जो कार्य किया जाय वह ऐसे कौशल और खूबीके साथ किया जाय कि उसमें देखने वाला व्यक्ति कोई खराबी न निकाल सके। यही उन्नतिकी सीढ़ी है और यही है सफलताकी कुञ्जी।

आजीविकामें सफलता दिलाने वाला दूसरा प्रधान गुण है व्यावहारिक ज्ञान। कोई पढ़ा-लिखा युवक भी अगर व्यावहारिक ज्ञानसे

शून्य है तो उसकी पढ़ाई-लिखाईका कुछ मूल्य नहीं। पढ़ाई-लिखाईका तभी कुछ मूल्यवान हो सकती है जब उसका कुछ सांसारिक उपयोग हो। यह उपयोग व्यावहारिक ज्ञान पर निर्भर होता है। मैट्रिक पास करके भी आजकलके लड़के व्यापारियोंकी साधारण चिट्ठी लिखने या रेलवे, पोस्टआफिस आदिकी साधारण शिकायतोंकी चिट्ठियाँ तक लिखने योग्य नहीं होते। फिर व्यावहारिक दृष्टिसे उनकी शिक्षाका मूल्य ही क्या है? स्कूलोंकी जैसी शिक्षा-प्रणाली है, उससे तो कोई व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त कर नहीं सकता, इसलिये प्रत्येक विद्यार्थीके लिये यह आवश्यक है, कि वह उपयोगिताकी दृष्टिसे भी ज्ञान प्राप्त करता रहे और जो कुछ पढ़े उसमेंसे कितनेका उपयोग किस रूपमें हो सकता है, यह भी सोचता रहे। व्यावहारिक ज्ञान घर और समाजमें प्राप्त हो सकता है। सूक्ष्म बुद्धिका विद्यार्थी घर और बाहरकी प्रत्येक घटनाको देख और सुनकर उससे व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त कर सकता है। जीवन-यात्रामें यही ज्ञान युवकका सबसे अधिक सहायक होता है, इसलिये प्रत्येक युवकको इसका कुछ-न-कुछ मात्रामें ज्ञान होना आवश्यक है।

व्यावहारिक ज्ञानके सम्बन्धमें लिखते हुए यहाँ शिष्टाचारके बारेमें कुछ लिखना आवश्यक है, क्योंकि शिष्टाचार व्यावहारिक ज्ञानका ही अंग है। घर आये हुए व्यक्तियोंके साथ नम्रतासे पेश आना, उनकी खातिर करना, उनके खान-पान और आरामका ख्याल रखना भारतीय शिष्टाचारका महत् अङ्ग है। दूसरेके घर जाने पर भी मिष्ट भाषण द्वारा उसे प्रसन्न और परितृप्त करना, जहाँ तक हो सके दूसरेकी निन्दा न करना, दूसरेकी बात ध्यानसे सुनना-

दो आदमी बात करते हों तो बीचमें न बोल उठना, बोलना आवश्यक ही हो तो उनसे क्षमा माँग कर बोलना, वस्त्राच्छादनमें लोकरुचिका ख्याल रखना, यथास्थान बैठना, मध्यम स्वरसे बोलना, खाँसने. खखारने, थूकने आदिके समय स्थानादिका ध्यान रखना शिष्टाचार है—जो व्यक्ति इन गुणोंसे शून्य है, वह सभ्य समाजमें आदर नहीं प्राप्त कर सकता। प्रत्येक युवकके लिये यह आवश्यक है कि वह सभ्य समाजमें उठ-बैठ कर वहाँके उठने-बैठने, बोलने-चालने और रहन-सहन आदि की जानकारी प्राप्त करके उसका उपयोग करना सीखे, क्योंकि इसके बिना पढ़ने-लिखनेमें होशियार युवक भी लोगोंकी नज़रोंसे गिर जाता है। इस प्रकार हम देखेंगे कि वास्तवमें व्यावहारिक ज्ञान आजिविका प्राप्तिका एक साधन है। आजकल आजीविका—रोज़गार और नौकरी प्रायः सभ्य सुशिक्षित और सम्पन्न लोगोंके हाथोंमें होती है, जो इन वाह्य शिष्टाचारोंकी ओर हार्दिक शिष्टाचारोंकी अपेक्षा अधिक ध्यान देते हैं। दया करके रोज़गार-धन्धे और नौकरी दे देनेका युग चला गया—अब तो जो युवक भीतरी और वाहरी दोनों ही दृष्टिसे शिष्ट, सभ्य, सुसंस्कृत, ईमानदार और सुभाषी होगा, वही ऐसी जगहोंमें बाजी मार ले जायगा। सभी दृष्टियोंसे अपनेको उत्तम सिद्ध करने वाले युवकोंके लिये आजकल संसारमें स्थान है; पढ़े-लिखे भोंदुओंके लिये नहीं। प्रत्येक उच्चाभिलाषी युवकको चाहिये कि वह ऐसे लोगोंमें मिल-जुल कर उनके आचार-व्यवहारसे शीघ्रातिशीघ्र परिचय प्राप्त कर ले जो उच्च श्रेणी के लोगोंसे अधिक मिलते-जुलते और सामाजिक सम्पर्क रखते हैं।

मितव्ययिता और स्वावलम्बन



कोई भी युवक जब किसी रोज़गार-धन्धे या नौकरीमें लग जाता है, तो उसे जहाँ अपनी विद्या-बुद्धि और व्यावहारिक ज्ञानका उपयोग करके आगे बढ़नेका अवसर मिलता है, वहाँ उसे यह दिखानेका मौक़ा भी मिलता है कि वह आर्थिक प्रबन्धमें कैसी पटुता रखता है और आजीविकाके लिये प्राप्त धनका सद्व्यय करके किस प्रकार भविष्यके लिये भी कुछ संग्रहीत करके स्वावलम्बी बनता है। मितव्ययिताके द्वारा संसारमें साधारण युवक कैसे बड़े-बड़े व्यक्ति बन गये हैं, इसका उदाहरण देने बैठें तो ऐसी एक और पुस्तक बन जायगी, किन्तु यहाँ इतना बतला देना तो अनिवार्य होगा कि अधिकसे अधिक धन कमाने वालोंने जहाँ मितव्ययिता

और किफ़ायतशारीसे काम नहीं लिया, वहाँ अन्तमें उन्हें फटेहाल होकर इधर-उधर भटकते देखा गया है। फ़िज़ूलखर्चीने बड़े-बड़े रईसज़ादोंको टुकड़ोंका मुहताज बना दिया और बड़े-बड़े सेठ साहूकारोंके लड़कोंको दर-दरका भिखारी बना दिया। नौकरी या धन्धे में हमें जो कुछ प्राप्त हो उसे बढ़ानेकी चेष्टा जारी रखते हुए भी हमें अपना खर्च इस प्रकार चलाना चाहिए कि बीमारी, शादी, ग़मी आदि भावी आवश्यकताओंके लिये कुछ बच रहे और ज़रूरत पड़ने पर किसीके सामने कर्जके लिये हाथ न पसारना पड़े।

यहाँ क़र्ज या ऋणके सम्बन्धमें कुछ शब्द लिखना विषयान्तर नहीं होगा। क़र्ज लेकर कोई भी नौकरी-पेशा या व्यापारी समृद्धिशाली और चिन्तारहित नहीं हो सकता। जिसने क़र्ज लेनेकी आदत डाल ली समझ लो कि उसका सर्वनाश निश्चित है। यहाँ क़र्ज लेकर तबाह होनेवालोंकी सूची बनाकर हम पुस्तकका आकार बढ़ाना नहीं चाहते, पर प्रत्येक गाँव, कस्बे और नगरमें ऐसे लोगों की प्रचुर संख्या अनप्रयास जानी जा सकती है जो क़र्जके चंगुलमें फँसकर अपना सर्वनाश कर चुके हैं। ऐसी अवस्थामें प्रत्येक युवक का यह नैतिक कर्त्तव्य है कि वह यथासम्भव क़र्जसे बचते रहनेका प्रण कर ले और जो कुछ अपनेको मिलता हो उसीमें से थोड़ी-बहुत रक़म ऐसे अवसरोंके लिये एकत्रित करता रहे जिसके कारण उसे क़र्ज लेनेके लिये बाध्य होनेकी सम्भावना हो।

प्रत्येक युवक का यह सर्व प्रथम कर्तव्य है कि वह अन्य सभी बातोंके साथ आर्थिक दृष्टिसे भी स्वावलम्बी बने। स्वावलम्बी

बननेके लिये अपनी कमाईमें से कुछ-न-कुछ लगातार संग्रहीत करते रहना अनिवार्य है। बचतकी रकमको जमा करनेके भी दो सर्वोत्तम तरीके हैं—एक तो डाक-खानेका सेविंग बैंक और दूसरा मियादी बीमा। जिन लोगोंकी नौकरी या धन्धा स्थायी ढङ्गका है उनके लिये तो यह परम वांछनीय है कि वे अपनी आमदनीके अनुसार एक खास रकम हज़ार-दो-हज़ार या पाँच दस हज़ार का मियादी बीमा करा लें। इसका मतलब यह होता है कि एक खास मियाद पाँच दस या बीस वर्षके बाद उसे अमुक रकम दो-चार या छः हजार मिल जाय। इसके लिये उसे मासिक, त्रैमासिक या वार्षिक किस्तोंमें एक निश्चित रकम बीमा कम्पनीमें जमा करानी पड़ती है। जिन गाँवों, कस्बों या शहरोंमें बीमा कम्पनियाँ नहीं हैं, वहाँके लोग अपने निकटवर्ती बड़े शहर की बीमा कम्पनियोंके एजेण्टोंके द्वारा बीमा करा लेते हैं और इस प्रकार किफायतशारीकी स्थायी आदत डाल देते हैं। जिनकी आमदनी स्थायी या निश्चित नहीं है, उन्हें चाहिये कि अपने पासके डाकखानेके सेविंग बैंकमें अपना हिसाब खोल लें, जो चार आनेसे भी खुल सकता है, और उसमें अपनी आयके अनुसार मासिक या साप्ताहिक कुछ-न-कुछ जमा करते रहें। इस जमा की हुई रकम पर २॥) सैकड़ा सालाना व्याज भी मिलता है और मध्यम श्रेणीके लोगोंके लिये यह सबसे सुरक्षित बैंक है। इसमें एक विशेषता यह भी है कि आप छोटे कस्बों, बाजारों और गाँवोंमें, (जहाँ कहीं भी डाकखाना है) यह हिसाब खोल सकते हैं और आवश्यकतानुसार यदि आप किसी

अन्यत्र जगहको स्थायी रूपसे जायँ तो वहाँके लिये परिवर्तित करा सकते हैं। बड़े बैंकोंमें रुपये जमा करानेमें यह सुविधा नहीं है कि आप अपने हिसाबको छोटे शहरों, कस्बों या गाँवोंमें परिवर्तित करा सकें, क्योंकि छोटी जगहोंमें ऐसे बैंकोंकी शाखाएँ होती ही नहीं।

युवकोंके लिये यह भी आवश्यक है कि जब तक वह आर्थिक दृष्टिसे पूर्णतः स्वतन्त्र न हो जायँ तब तक घरवालों या पिताके भरोसे पर विवाह न करें। इसका यह मतलब नहीं है कि वह अपने परिवार वालों तथा पिता पर अविश्वास करें; किन्तु वास्तविक सुख तभी मिल सकता है जब आर्थिक दृष्टिसे परमुखापेक्षी न बनना पड़े। इसके लिये यह आवश्यक है कि प्रत्येक युवक विवाह करनेके पूर्व नौकरी या कोई व्यवसाय करके स्वतन्त्र रूपसे कुछ अर्जित करने लगे। पैतृक सम्पत्ति या परिवार वालोंकी सहायताके भरोसे विवाह करके कोई भी स्वतन्त्र प्रकृति का युवक सुख नहीं भोग सकता, क्योंकि मालूम नहीं कब परिवार वाले मदद देनेसे हाथ खींच लें या पिता अप्रसन्न होकर आर्थिक सहायता से वञ्चित रक्खें। ऐसी अवस्था आने पर विवाहित युवक विशेष कष्टका अनुभव न करके देश या विदेश जाकर किसी-न-किसी प्रकार अपना उदर-पोषण कर सकता है, किन्तु विवाहित होने पर उसके पैरमें बेड़ी पड़ जाती है, और हमारे देशका रिवाज तथा सामाजिक अवस्था ऐसी नहीं है कि हम स्त्रीको लिये शहर-शहर घूमें और रोजगार तलाश करें।

युवावस्थाके आरम्भमें जवानीकी तरङ्ग और ऐन्द्रिक भोगकी लालसासे प्रायः युवक विवाह करनेके लिये समुत्सुक दिखलायी देते हैं। यद्यपि हमारे देशकी प्रथा ऐसी है कि प्रायः माँ-बाप और परिवारके बड़े-बूढ़े ही युवकोंके विवाहमें शीघ्रता करते हैं, किन्तु यदि युवक अपने माँ-बाप या परिवार वालों पर यह बात भली भाँति प्रकट कर दें कि वह जब तक आर्थिक दृष्टिसे स्वतन्त्र नहीं हो लेता,—अर्थात् नौकरी या दुकानदारी आदिके धन्धेसे कुछ कमाई नहीं करने लगता, तब तक वह विवाह नहीं करना चाहता, तो कोई भी समझदार माँ-बाप या परिजन इसका विरोध नहीं करेंगे।

जैसा कि ऊपर बतलाया गया है, नौकरी या व्यवसाय करने पर शुरूसे ही किफ़ायतशारीकी आदत डाल लेने पर अन्तमें बड़ा सुख मिलता है और मनुष्यमें सदा स्वावलम्बन, आत्मनिष्ठा, निर्भयता, कुअवसर आ जाने पर उसका मुकाबला करनेका साहस रहता है। स्वार्जित धन थोड़े परिमाणमें जमा रहने पर भी मनुष्य अपने हृदयमें एक प्रकारके आह्लाद और स्फूर्तिका अनुभव करता है। मितव्ययी युवकके मनमें भविष्यकी चिन्ता कभी चक्कर नहीं लगाती। प्रत्येक परिस्थितिका मुकाबला करनेके लिये वह तैयार मिलता है और घबराहट उसके पास नहीं फटकती। किफ़ायतशार या मितव्ययी युवकको अपनी इस आदतका सबसे सुन्दर बदला इस प्रकार मिलता है कि उसका रहन-सहन, भोजन-छाजन सादा और चरित्र निर्मल होता है। आरम्भसे ही इस प्रकारकी सादगीकी आदत पड़ जानेके कारण वह फिजूल खर्ची और चरित्र भ्रष्टताकी ओर कम

झुकता है। प्रायः सभी शाहखर्च या उड़ाऊ युवक फैशनके भक्त और चारित्रिक दृष्टिसे पतित होते हैं, इसलिये यदि हम मितव्ययिताको चरित्र-निर्माणमें परम सहायक और युवकमात्रके लिये महाप्रसाद मानें तो अनुचित न होगा। बहुतसे ऐसे युवक जिनके पास पर्याप्त पैतृक सम्पत्ति है, दोस्त मित्रोंके चक्रमेमें आकर या समाजमें कंजूस कहे जानेके भयसे अपनी थैलीका मुंह खोल देते हैं। और कुछ दिन तक दोस्त-मित्रों और समाजवालोंमें उनकी वाह-वाही होती है, किन्तु जहाँ जरा परिस्थिति बदली कि दोस्त-मित्र सगे-सम्बन्धी सब हवा हो जाते हैं। यदि आरम्भसे ही मितव्ययिता और सादे जीवनका अभ्यास हो तो प्रथम तो दुर्दिन आनेकी नौबत ही नहीं आती और यदि आये भी तो सादे भोजन-छाजन और परिमित व्ययके कारण वैसे कष्टका अनुभव नहीं करना पड़ता, जैसा एक शाहखर्चको ऐसी अवस्थामें करना पड़ता है और शारीरिक तथा मानसिक वेदनाका शिकार बनना पड़ता है। इसलिये मितव्ययिता न केवल धन-संग्रहके लिये ही आवश्यक है, प्रत्युत इससे चरित्र-निर्माणमें भी सहायता मिलती है। मानव स्वभाव ऐसा है कि एक व्यक्तिको जितना ही मुक्तहस्त होकर धन खर्च करनेको मिले उतना ही वह उसके नये-नये साधन खोजता है और उसके गिर्द उन साधनोंके प्रस्तुत करनेवालोंका झुण्ड जमा होने लगता है, जो उसे पतनके गर्तमें ढकेलनेमें सहायक होता है। संगतिका प्रभाव मनुष्य पर पड़ता ही है और धीरे-धीरे फिसल कर पतनके इतने समीप जा पहुँचता है, जिसकी उसने कभी कल्पना नहीं की थी। आर्थिक

दृष्टिसे सम्पन्न होते हुए भी जो मितव्ययी होता है उसके पास इस प्रकारके अवाञ्छनीय स्वार्थियोंका झुण्ड नहीं आता, क्योंकि उसकी मितव्ययिता देखकर वह जानता है कि उस पर उसकी माया नहीं चल सकती।

जिस युवकमें मितव्ययिताका गुण नहीं है, समझ लेना चाहिए कि वह कर्त्तव्यनिष्ठ नहीं है। जो व्यक्ति अपनी सारी कमाई उड़ा देता है, वह अपने पारिवारिक और सामाजिक कर्त्तव्योंसे चूक जाता है। प्रत्येक युवकका संसारमें कोई न कोई आश्रित होता है—माँ, बाप, भाई, बहन तथा अन्य परिजनोंके अतिरिक्त वह निकट भविष्यमें ही विवाह करके गृहस्थ बननेवाला होता है। ऐसी अवस्थामें उसका द्रव्य-संग्रह न करना सामाजिक पाप है। द्रव्य संग्रह न करनेवाला युवक अपने आपको ही नहीं बिगाड़ लेता, प्रत्युत वह अपने समस्त सगे-सम्बन्धियों तक-का भविष्य बिगाड़नेमें सहायक होता है। भारतीय परिवार पद्धति ऐसी है कि एक होनहार युवकसे उसके सभी सम्पर्कीय कुछ-न-कुछ सहायता पानेकी आशा रखते हैं; किन्तु जो युवक मितव्ययिता और संग्रहशीलताकी आदत नहीं डालता वह उन्हें अपनी सहायतासे वञ्चित ही नहीं करता, वरन् अपना भविष्य भी अन्धकारमय बना लेता है, क्योंकि ऐसे स्वार्थी व्यक्तिके पास कोई भी अपना-पराया नहीं फटकता, न कभी कोई उसकी सहायता करता है। सभी तरहके सुख-दुःखमें वह अकेला रहता है और कोई भी व्यक्ति उसे अच्छी दृष्टिसे नहीं देखता।

क्षण भरके लिये यदि परिवार और समाजका खयाल छोड़कर

भी केवल स्वार्थकी दृष्टिसे विचार किया जाय तो भी मितव्ययिताका महत्व कम नहीं होता। यदि अपने आश्रितों और सम्बन्धियोंको किसी प्रकारकी सहायता देना अभीष्ट न हो तो भी अपने जीवनमें सफलता प्राप्तिके लिये अर्थ-संग्रह आवश्यक है। कोई भी व्यक्ति जो युवावस्थामें किफ़ायत करके अर्थ-संग्रह नहीं करता, ढलती उम्रमें पछताये बिना नहीं रह सकता। अपने निजी सुखके लिये और बाल-बच्चे वाले बन जानेपर अपने निकटतम परिवारके लिये भी कुछ-न-कुछ संग्रह न कर रखनेवाला वास्तवमें पशु-पक्षियोंसे भी गया-बीता है, क्योंकि कुत्ते भी भविष्यके लिये फ़ालतू रोटी छिपाकर रख दिया करते हैं; शहदकी मक्खियाँ एक-एक फूलसे मधु-संचय करके उसे भविष्यके लिये ही सिरजती हैं—फिर भला मनुष्य, जो अपनेको सृष्टिकी सर्वोत्तम रचना समझनेका गर्व करता है, संचयशीलता और भविष्यदर्शिताके सद्‌गुणोंसे वंचित हो तो कितने दुःखकी बात है।

प्रत्येक उपार्जनशील युवकको चाहिए कि वह रुपयेके महत्त्वको समझे और रुपयेके बिना देशमें लोगोंकी जो दशा हो रही है, उसे समझनेका प्रयत्न करे। हमारे देशके प्राण—देहातोंमें जाकर देखिये, एक-एक पैसेके बिना लोगोंकी क्या दुर्दशा हो रही है। किसानोंकी यह अवस्था हो रही है कि दो-दो चार-चार रुपयेके बिना उनकी इज्जत उतर रही है—उनके फटे हुए मैले-कुचैले वस्त्र ही उनके जीवनकी कहानी कह रहे हैं। ऐसी दशामें केवल ऐशो-आरामके लिये पैसे फेंकना अपने इस दरिद्र देशके साथ अन्याय करना है।

यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि जिस व्यक्तिके पास रुपये

नहीं है, संसारमें वह न तो अपना भला कर सकता है न दूसरेका। रुपये होनेपर ही आदर्शोंका कुछ मूल्य हो सकता है। रुपये पास न होनेपर बड़े-बड़े विद्वान् और गुणवान दर-दर ठोकर खाते फिरते हैं। जिस रुपयेके बिना सज्जन विद्वानोंकी यह दुर्दशा होती है, उसे बेदर्दीसे खर्च कर देना और उसके संग्रहकी कुछ भी कोशिश न करना निरी मूर्खता नहीं तो और क्या है।

अर्थोपार्जन ही स्वावलम्बनकी जड़ है और संसारमें स्वावलम्बन और स्वतन्त्रतासे बढ़कर और कोई चीज नहीं है। एक स्वावलम्बी व्यक्ति ही अपनी इच्छानुसार खा-पी, चल-फिर और जाग-सो सकता है। जिसे आर्थिक स्वतन्त्रता नहीं है, वह संसारमें रहकर भौतिक सफलता नहीं प्राप्त कर सकता। आर्थिक स्वतन्त्रता न होनेके कारण लोगोंको अच्छे-बुरे सभी कर्म करने पड़ते हैं और परायी दासता—नौकरी—करनी पड़ती है, इसलिये प्रत्येक युवकके लिये यह परमवाञ्छनीय है कि वह पहले अर्थोपार्जन करे और उसके बाद कमाये हुए रुपयेका सदुपयोग करते हुए भविष्यके लिये कुछ संचित कर रखे जिससे उसे परतन्त्रताका दुख कभी न भोगना पड़े। इस बातको स्मरण रखना चाहिये कि रुपया कमाना जितना कठिन है उसका संग्रह करना उससे भी अधिक कठिन है, इसलिये खूब सोच-विचार कर पैसे-पैसेका सदुपयोग करते हुए रुपया खर्च करना चाहिए और भविष्यके लिये कुछ-न-कुछ संग्रह अवश्य कर लेना चाहिए।

विवाह

रहस्यमयी सृष्टिको समझनेके लिये हमें सबसे पहले मनुष्य-जातिकी उत्पत्तिका इतिहास जाननेकी आवश्यकता है, क्योंकि वास्तवमें मानव-जाति ही सृष्टिका प्रधान अङ्ग है। यदि मानव जातिका अस्तित्त्व न होता तो सृष्टिके अन्य सभी जीव-जन्तु व्यर्थ-से थे। मनुष्यने ही सृष्टिमें उपयोगितावादकी सृष्टि की और अपने प्रखर बुद्धि-बलसे उसके अन्तर्भूत तत्त्वोंके सिद्धान्त जाननेमें सफलता प्राप्त करनेकी चेष्टा की। सृष्टिके इस सर्वश्रेष्ठ रत्न-मानव समाज के दो भाग हैं, जो संसारके परिचालनमें सम्यक्‌रूपसे हाथ बटाकर इसे स्वर्ग-तुल्य बना सकते हैं। इन दोनों भागोंका एक दूसरेसे ऐसा

अन्योन्याश्रितका सम्बन्ध है कि एक के बिना दूसरेके अस्तित्वपर विचार ही नहीं किया जा सकता। विज्ञान कितनी ही उन्नति क्यों न करले; परन्तु एक भागके अभावमें दूसरेका अस्तित्व कायम करना उसके वशके बाहर की बात है। मानव समाजके ये दोनों भाग हैं स्त्री और पुरुष। जिस प्रकार पुरुषके बिना स्त्रीका अस्तित्व असम्भव है, वैसे ही स्त्रीके बिना पुरुषकी कल्पना सम्भव नहीं। मानवजातिके इस अङ्ग-द्वयके सामंजस्यसे ही अतीतकालसे सृष्टिका विकास होते-होते मनुष्य जाति इतने विस्तृतरूपमें धरातल पर फैल पायी है। वास्तवमें ये दोनों अङ्ग पृथक् होते हुए भी एक हैं; किन्तु जिस प्रकार किसी यन्त्रके पृथक्-पृथक् भाग अपने भिन्न-भिन्न कार्य करते हुए उसका संचालन करते हैं उसी भाँति उसी प्रकार मानव समाजके ये दोनों अङ्ग अपना-अपना कार्य करते हुए संसार-रूपी यन्त्रका संचालन सुचारुरूपसे करते हैं। दोनोंके लक्ष्य एक हैं, किन्तु क्रिया—कर्त्तव्य पृथक् पृथक्। यदि यन्त्रका एक पुर्जा अपना कार्य बन्द करदे तो दूसरा अङ्ग सम्यक् रूपेण कार्य नहीं कर सकता, इसी प्रकार यदि मानव समाजका कोई भी अङ्ग—स्त्री या पुरुष—अपना कर्त्तव्य-पालन न करे तो संसार-यात्रा सुगमतापूर्वक पूर्ण नहीं हो सकती।

पुरुषकी प्रकृति बहिर्मुखी होती है अतः उसपर कर्त्तव्यका बोझ गुरुतर एवं अपेक्षाकृत अधिक उत्तरदायित्वपूर्ण होता है। स्त्रीकी प्रकृति अन्तर्मुखी होती है अतः उसे अन्तःपुर—घरका भीतरी कार्य—भोजन बनाना, बच्चोंका पालन-पोषण, गृह-प्रबन्ध आदि दिया

गया है। जो युवक अविवाहित है उसका घर और बाहर दोनों सुचारुरूपसे नहीं संचालित हो सकता। आजकल विवाहको झंझट समझनेकी प्रथा यूरोप अमेरिकाकी भाँति भारतमें भी चल पड़ी है; किन्तु जो लोग ऐसा समझते हैं वे यदि विश्व-सेवा करना चाहते हैं या ब्रह्मचर्यव्रत रख कर कोई आदर्श क़ायम करना चाहते हैं, तब तो और बात है; किन्तु जो विवाह न करके दाम्पत्यजीवनसे बचकर काम-लिप्सामें स्वतन्त्र विचरण करना चाहते हैं या कलियों-कलियोंका रस चखनेके गुप्ताभिलाषी हैं, उन्हें आगे चलकर कभी-न-कभी अपने निश्चयपर पछताना पड़ेगा। विवाह बन्धन नहीं; पर वह ऐसा बन्धन है जिसमें जकड़ कर मनुष्य संयम, वास्तविक प्रेम और सेवा सब कुछ सीखता है। वास्तवमें गृहस्थाश्रम विश्व सेवाका संक्षिप्ततम संस्करण या प्रारम्भिक पाठशाला है, जहाँ मनुष्य प्रेम, सेवा, सहानुभूति और तितिक्षाका पाठ पढ़कर तब विस्तृत संसारकी सेवा कर सकता है। कोई व्यक्ति यकायक संसार का सेवक नहीं बन सकता—इसकी सीढ़ियाँ होती हैं। हमारे प्राचीन ऋषियोंने जो ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, बाणप्रस्थ और संन्यास आश्रमोंकी स्थापना की थी, उसके अन्दर यही गूढ़ रहस्य था। जब तक मनुष्य एक छोटे परिमाणमें कोई कार्य नहीं कर लेता तब तक वह किसी विशाल कार्यके करने योग्य नहीं माना जा सकता। संसारकी सेवा करनेके लिये उसके जिस क्षेत्रमें भी कार्य करनेकी अभिलाषा हो पहले उसका कुछ अनुभव अनिवार्य है। पहले वह एक छोटे संसार—परिवार—में रहकर उसकी सेवा करके कुछ अनुभव प्राप्त

के तभी वह सुविस्तृत संसारकी सेवा करनेके योग्य हो सकता ।

विवाह केवल काम-वासनाकी पूर्ति करके कौटुम्बिक विस्तार रनेके उद्देश्यसे नहीं किया जाता। हिन्दू-संस्कृतिके अनुसार विवाह शारीरिक के साथ-साथ आध्यात्मिक बन्धन भी है—स्त्रीके साथ आत्मिक संयोग भी होना आवश्यक है। यह सच है कि इसके लिये स्त्रीके चुनावमें सावधानी वर्तनेकी आवश्यकता है। हिन्दू-जातिमें राशि-विचार की जो प्रथा रक्खी गयी है, वह पूर्णतः वैज्ञानिक है। किन-किन राशियोंमें, किन-किन नक्षत्रोंमें उत्पन्न स्त्री-पुरुषोंका स्वभाव और शारीरिक संयोजन परस्पर मिल सकता है, इसीको गणना-विचार कहते हैं। नक्षत्रोंका प्रभाव स्त्री-पुरुषके शारीरिक अंगोंपर पड़ता है, इसलिये गणनाके अनुसार दोनोंके अंग-विस्तारका विचार भी हो जाता है। बहुत-से नयी रोशनीके लोग इन बातोंको व्यर्थ समझकर इनसे घृणा करते हैं; किन्तु अब जब कि यूरोप और अमेरिकाके विख्यात वैज्ञानिकोंने भी इस बातका समर्थन किया तो लोग मानने लगे हैं। हमारी प्राचीन प्रथाओंमें यही विशेषता है कि उनमें मोटी दृष्टिसे कोई विशेषता नहीं प्रतीत होती; किन्तु उनका आधार वैज्ञानिक होता है।

विवाहके सम्बन्धमें निम्नलिखित बातें प्रत्येक युवकके लिये विचारणीय हैं:—

(१) लड़कीका रूप-रंग और स्वभाव,

(२) उसकी अवस्था,

(३) उसकी पात्रता अर्थात् जाति-निर्णय,

(४) उसकी शिक्षा-दीक्षा,

(५) उसका स्वास्थ्य।

यद्यपि आज कलके युवक अपनी भावी पत्नीको एक नजर देख लेने और यदि सम्पन्न हो तो उसके स्वभाव और विचारोंसे परिचित हो जानेकी अभिलाषा अवश्य रखते हैं, किन्तु कन्या पक्षके अधिकांश लोग प्राचीन रूढ़िके विरुद्ध ऐसा करना उचित नहीं समझते और सिवा थोड़ेसे उच्च अंग्रेजी शिक्षित नयी रोशनीके साहबोंके और कोई इस बातको पसन्द नहीं करता कि उनकी बहन या कन्या अपने भावी पतिसे बात-चीत करे। इसके सम्बन्धमें सरल और सीधा उपाय यह है कि बर-पक्षकी कोई कुशल स्त्री ही कन्याको देख कर उसके गुण-अवगुणकी जाँच कर ले। इसमें कन्या पक्षवालोंको भी कोई आपत्ति न होगी और यदि इसमें भी आपत्ति हो तो समझ लेना चाहिये कि या तो उनकी कन्यामें कोई दोष है या फिर वे इतने दक़ियानूस हैं कि उनसे किसी भी ऐसे परिवारको सम्बन्ध नहीं करना चाहिये जो शिक्षित और सभ्य हो। वर-पक्षसे जानेवाली स्त्री लड़कीका रूप-रंग और स्वास्थ्य तो देख ही लेगी, साथ ही उससे बात-चीत करके उसका स्वभाव भी जान लेगी। साथ ही लड़कीकी अवस्था (उम्र) भी, जो प्रायः कन्या पक्ष वाले वर-पक्षसे छिपाया करते हैं भाँप लेगी। इस प्रकार सहज ही कन्याके पक्षमें ख़ासी जानकारी हो जायगी और इसके करनेमें किसीको विशेष आपत्ति भी नहीं होगी।

आज कलके कुछ शिक्षित युवकोंमें यह रोग भी चल गया है कि अन्य प्रान्तकी लड़कीसे शादी की जाय। यद्यपि स्थूल दृष्टिसे और मनुष्यताके नाते इस बातका विशेष विरोध नामधारी उच्च-शिक्षा सम्पन्न लोग नहीं करते, किन्तु ऐसा करनेमें एक बहुत बड़े वैज्ञानिक सिद्धान्तकी हत्या होती है। ब्राह्मणका ब्राह्मण लड़कीसे विवाह करना, कायस्थ-का-कायस्थ कन्या होसे पाणि-ग्रहण करना और वैश्यका बनियेकी ही लड़कीसे परिणय करना स्वाभाविक और वैज्ञानिक दृष्टिसे अनुकूल है। पीढ़ी-दर-पीढ़ीसे एक जातिकी सन्तान जो परम्परागत गुण ग्रहण करती है और उस पर अपने माता-पिताके जो संस्कार पड़ते हैं, उनकी उपेक्षा कैसे की जा सकती है। एक ब्राह्मणकी लड़की जो अपने शिक्षित माता-पिताके अध्यात्मिक वातावरण मय घरमें रह चुकी है, एक बनियेके व्यापारिकता-मय घरमें आनन्दका अनुभव कैसे कर सकती है। सदियोंसे जिस जाति और जिस परिवारमें एक विषयका प्राधान्य चला आता है, अकस्मात् उस परिवारके एक प्राणीको दूसरे ऐसे परिवारमें ला घुसेड़ना जहाँ उससे नितान्त भिन्न वातावरण हो; अस्वाभाविक है। यह तो हुआ अन्तर्जातीय विवाह-निषेधका पहला और बाह्य कारण अब आन्तरिक और मनोविज्ञानात्मक कारण देखिये। यह सब स्वीकार करेंगे कि प्रत्येक जातिमें नम्रता, सहनशीलता, क्रोध कंजूसी और उदारता आदि गुण विभिन्न परिमाणमें होते हैं। उदाहरणार्थ औसत रूपमें एक वैश्यमें जितनी नम्रता और सहन-शीलता होगी एक क्षत्रियमें उतनी नहीं हो सकती चाहे अविनय और अन-

हिष्णुताके कारण उसे हानि ही उठानी पड़े। यह सच है कि इस नियमके अपवाद भी हैं और क्षत्रियोंमें भी सहनशील और विनम्र मिल सकते हैं तथा वैश्योंमें भी अविनयशील तथा असहिष्णु पाये जाते हैं, किन्तु यह नियम सामूहिक रूपमें देखा जाता है, व्यक्तिगत रूपमें नहीं, इसके कारणों पर विचार करते हुए हमें यह मानना पड़ता है कि बहुत कालसे ऐसी वृत्तिमें पड़े रहनेके कारण इन जातियोंके मन पर अपने-अपने पेशों—व्यवसायोंका गहरा प्रभाव पड़ा है। क्षत्रिय जाति सहस्रों-लाखों वर्षसे लड़ती झगड़ती और शासन करती आयी है अतः उसके पेशेका उसके मन पर गहरा प्रभाव पड़ा है, इसी तरह वैश्य जाति सदासे व्यापार करके धन-रक्षामें दत्तचित्त रहती आयी है, अतः उसमें धन रक्षार्थ मितव्ययिता और आत्म रक्षार्थ शारीरिक शौर्य तथा युद्ध कलाके अभावमें नम्रता स्वाभाविक रूपमें आ गयी है। ऐसी अवस्थामें इन विभिन्न जातियों में वैवाहिक सम्बन्ध स्वाभाविक रूपमें अवाञ्छनीय हैं। हाँ, जो लोग इन जातियों के दायरेसे बाहर निकल आ गये हैं, वे यथेच्छाचार कर सकते हैं, यद्यपि उन पर से भी अपना पूर्व जातीय प्रभाव अर्से तक दूर नहीं हो सकता। अनेक शताब्दीसे उनके पूर्वज जिस ढङ्ग का जीवन व्यतीत कर चुके हैं, यह सम्भव नहीं है कि उसका प्रभाव यकायक दूर हो जाय।

अब रही अन्तर्प्रान्तीय विवाहकी बात। सो इसका खण्डन तो सहज ही में हो जाता है। प्रायः एक प्रान्तका खान-पान, वस्त्राच्छादन, आचार-व्यवहार और भाषा दूसरे प्रान्तसे भिन्न है, इस-

लिये एक प्रान्तके युवकको दूसरे प्रान्तकी युवती यदि अपने सौन्दर्यसे आकर्षित भी कर ले तो उपर्युक्त बातोंमें समता न होनेके कारण उसका मन कभी पूर्णतः मिल ही नहीं सकता। यह स्वाभाविक है कि एक प्रान्तका निवासी अपने प्रान्तके रस्मोरिवाज, खान-पान तथा भाषाको दूसरे प्रान्तकी अपेक्षा अधिक पसन्द करता है, फिर भिन्न रस्मोरिवाज, खान-पान तथा भाषा रखने वाली युवती उसके मनको पूर्णतः कैसे आकर्षित कर सकती है? यह सच है कि कुछ ऐसे पथ-भ्रष्ट हिन्दुस्तानियोंने जिन्होंने अंग्रेज़ी भाषाको अपनी मातृ-भाषा, अंग्रेज़ी पोशाकको अपना जातीय बाना, और अंग्रेज़ी भोजनको स्वीकार कर अपना खाद्य बना लिया है, अन्तर्प्रान्तीय विवाह किये हुए हैं और उन्होंने समझा है कि उन्होंने भाषा, भेष और भोजन सम्बन्धी एकता स्थापित करनेका आदर्श कायम किया है, किन्तु उनका वैवाहिक जीवन कभी भी सफल नहीं हुआ और दाम्पत्य प्रेम केवल कामासक्तिकी हलकी जड़ पर ही अवलम्बित रह गया। ऐसी अवस्थामें उनको पारिवारिक सुख कभी भी नसीब नहीं हो सकता। न उनकी सन्तान ही अपना विशेष जातीय गौरव रख सकती है। बङ्गाली, पञ्जाबियों और बङ्गाली, मद्रासियोंमें जो इस प्रकारकी शादियाँ हमारे देश में हुई हैं, उनका अन्तिम परिणाम सुन्दर नहीं हुआ।

अब कन्याकी शिक्षा-दीक्षा पर विचार कीजिये। साधारणतः पढ़-लिख लेना, भोजन बना लेना, अन्य गृह-कार्योंमें दक्ष होना तथा सीने-पिरोने तथा सङ्गीतमें अभ्यास रखना होता है। गृहस्थके

धनाढ्यकी लड़की होनेके कारण ही विवाह-सम्बन्ध करनेको तैयार हो जायँ; लड़कीके गुणावगुण, अवस्था और शक्ल-सूरतपर विचार न करें वहाँ युवकको इसका विरोध करना अनुचित नहीं है, क्योंकि अन्तत: युवकको ही उसके साथ सारा जीवन व्यतीत करना है, उसके माँ-बापको नहीं। माँ-बाप तो थोड़े समय तक ही जीवनमें साथ दे सकेंगे। ऐसी अवस्थामें सदोप लड़कीका परिणय युवकके लिये विष तुल्य हो जाता है और उसे पीछे पछताना पड़ता है। लड़कीके माँ-बाप भी फिर उसे विशेष सहायता नहीं देते—विवाह करके अपना पिण्ड छुड़ाते हैं।

प्रत्येक युवकको विवाह करनेका अधिकार नैतिक दृष्टिसे तभी है जब उसकी शारीरिक अवस्था बिल्कुल दुरुस्त हो। वह रोगादिसे रहित हो और उसकी मानसिक अवस्था भी पूर्णत: दुरुस्त हो। इसके बाद उसमें शिक्षाके साथ आर्थिक दृष्टिसे भी स्वावलम्बन होना चाहिए। बिना इन दोनों ही दृष्टियोंसे सम्पन्न हुए विवाह करना नैतिक अपराध है, क्योंकि जिस प्रकार स्वस्थ पुरुप यह आशा करता है कि उसे स्वस्थ पत्नी मिले उसी तरह स्वस्थ स्त्री भी स्वस्थ पुरुषकी ही कामना करती है। क्योंकि रोगी पति भी स्त्रीके लिये भारस्वरूप हो जाता है, इसलिये प्रत्येक युवकको अपने स्वास्थ्यका विचार करते हुए ही वैवाहिक सम्बन्धकी आकाँक्षा करनी चाहिए।



स्त्रीके प्रति कर्त्तव्य

यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि विवाह करते ही पुरुष एक प्रकारके कर्त्तव्य-बन्धनमें बँध जाता है और उसपर एक प्रकारकी विशेष जिम्मेदारी आ पड़ती है। पुरुष पर न केवल स्त्रीके भरण-पोषणका ही उत्तरदायित्व है; वरन् प्रत्येक दृष्टिसे उसपर स्त्रीके प्रसन्न और सन्तुष्ट रखनेका भार होता है। जो पुरुष अपने इस कर्त्तव्यमें सफल हो वही विवाहका आनन्द भी प्राप्त कर सकता है। वास्तवमें पुरुषको चाहिए कि वह स्त्रीको अपना ही एक अङ्ग समझे। इसी भावनासे हमारे पूर्व पुरुषोंने स्त्रीको अर्द्धाङ्गिनी कहा है। स्त्रियोंका आदर करना भारतके लिये कोई नई बात नहीं है। मनुभगवान् कह गये हैं:—

यत्र नार्यास्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता

गोस्वामी तुलसीदासने भी स्त्रियोंके आदरकी परिपाटीका चित्रण रामचरितमानसमें अनेक स्थानोंपर किया है। भगवान् रामचन्द्रने जिस समय वन जाते समय गंगातटपर नौकामें वैठकर पार किया था, तब **त्रिया चढ़ाइ चढ़े रघुराई** का शिष्टजनोचित व्यवहार प्रदर्शित किया था।

स्त्रियोंके प्रति आदर-भाव तो रखना ही चाहिये, साथ ही उन पर पूर्ण विश्वास रखकर उनके गुणोंकी कद्र करनी चाहिए। संसारके सभी स्त्री-पुरुषोंमें कोई-न-कोई दोप मिलते ही हैं, किन्तु किसी दोषके कारण उसके गुणोंका आदर न करना अशिष्टता और असभ्यताका लक्षण है। स्त्रीमें यदि कोई स्वभाव जनित अथवा व्यावहारिक दोष हो तो उसपर खीजनेके बदले उसे सौम्य शब्दोंमें समझा देना अधिक प्रभावोत्पादक सिद्ध होगा।

बहुत-से पुरुष स्त्रियोंको काम-वासनाकी पूर्तिका एक साधनमात्र समझते हैं और इसलिये गृहस्थ सम्बन्धी अन्य गुणोंपर ध्यान न देकर उनके सौन्दर्यकी ही उपासना करते हैं। यह भारी भूल है, और कुछ ही दिनोंमें युवावस्थाका उफ़ान शान्तक हो जानेपर पुरुषको अपनी भूल मालूम हो जाती है। पुरुषको चाहिए कि स्त्रीमें आचार-व्यवहार और सामाजिक मेलजोल सम्बन्धी जो त्रुटियाँ हों, गृहस्थी-सम्बन्धी जिन बातोंका ज्ञान उसे न हो, उसे सिखानेका प्रबन्ध कर दें। पाकविद्या, सीना-पिरोना, क़सीदे-बूटे, मोजे, गुलूबन्द और स्वेटर आदि बुनना स्त्रियोंको सहज ही सिखाया जा सकता

है। बच्चे होनेके पूर्व स्त्रियाँ ये गुण भलीभाँति सीख जायँ तो उन्हें अधिक सुविधा रहती है, क्योंकि बच्चे हो जानेपर उनका अधिकाँश समय उनके पालन-पोषणमें व्यतीत होने लगता है और फिर उनके लिये कोई नई विद्या सीखना कष्टकर हो जाता है।

जिस स्त्रीने अपने नैहर (पितृगृह) में विद्याभ्यास न किया हो उसे पतिगृहमें पढ़ाया जा सकता है और साल छः मासमें ही उसे हिन्दी और हिसाबका साधारण ज्ञान करा दिया जा सकता है, जिससे वह घरका हिसाब-किताब रखना, साधारण पुस्तकें आदि पढ़ लेना सीख सकती है। बहुत-सी लड़कियोंको माता-पिताके लाड़-प्यारके कारण नैहरमें भोजन आदि बनानेकी सुविधा नहीं प्राप्त होती। ऐसी लड़कियोंपर पति या पतिगृहवालोंको अकारण कोप न करके उन्हें सीखनेका अवसर देना चाहिए।

पाश्चात्य देशोंकी देखा देखी इधर भारतमें भी स्त्रियोंके समान मताधिकारकी चर्चा चल पड़ी है। जहाँ तक स्त्रियोंके राजनीतिक और विचार-सम्बन्धी मताधिकारका सम्बन्ध है, वहाँ तक कोई भी निष्पक्ष विचारक इससे असहमत नहीं हो सकता; किन्तु जब यह समानताका रोग सामाजिक क्षेत्रमें प्रवेश करता है तो इसके साथ अनेक विषम समस्याएँ और उपस्थित हो जाती हैं। प्रकृतिने स्त्रीको ऐसा बनाया है कि उसकी आवश्यकताएँ पुरुषसे भिन्न हैं अतः अनेक पारिवारिक और सामाजिक मामलोंमें पुरुष और स्त्रियोंका हिस्सा विभिन्न होता है। घरेलू काम-काज सँभालने, बच्चोंका पालन-पोषण करने और रसोई बनाने आदिमें यदि स्त्रियाँ पुरुषका मुकाबला

करने लगें और चौकेसे परहेज़ तथा रसोईसे घृणा करके इन कामोंके लिये नौकर-नौकरानी नियुक्त करनेका आग्रह करें, तब तो यह समझना चाहिए कि वे उस स्वाभाविक नियमका उल्लङ्घन कर रही हैं, जिसके लिये परमात्माने उन्हें बनाया है। उपर्युक्त महत्त्वपूर्ण कार्य सँभालनेकी स्त्रियोंमें स्वाभाविक क्षमता होती है और यह बात बिना विरोधके कही जा सकती है कि पुरुष औसतरूपसे इन कामोंमें कभी स्त्रियोंकी प्रतिस्पर्द्धा नहीं कर सके हैं। विलायतमें स्त्रियोंका समानताधिकारका दावा जिस वेगसे चला था, वह अब प्रतिक्रियाकी अवस्थामें है। वहाँके बड़े-बड़े समाजशास्त्रवेत्ता अब यह कहने लगे हैं कि स्त्रियाँ प्रत्येक बातमें पुरुषोंकी बराबरीका दावा करके भयंकर भूल कर रही हैं और इसका मूल्य समाजको चुकाना पड़ेगा। भारत चूंकि नकल करनेमें बहुत पटु है, इसलिए वह विलायतके समाज-घातक रीति—रिवाजों तकको अपनानेके लिये इस समय बहुत सचेष्ट जान पड़ता है; किन्तु वह दिन दूर नहीं है जब वह अपनी भयंकर भूलका अनुभव करके अन्धानुकरणका परित्याग करेगा। समाजमें स्त्रियोंकी स्वच्छन्दता और बराबरीके अधिकारका दावा पुरुषके मस्तिष्ककी उपज है। इसीने इसे प्रोत्साहन दिया है और भारतमें भी विलायती साहबोंकी देखादेखी अपनी गृहिणीको भी मेम साहब जैसी स्वच्छन्दता प्रदान करनेका उद्योग किया जा रहा है।

यद्यपि यह नहीं कहा जा सकता कि विवाहित स्त्री-पुरुषोंको पूर्ण ब्रह्मचारी बनने की चेष्टा करनी चाहिए; किन्तु यह कहना भी उचित

नहीं प्रतीत होता कि पुरुष, वासनाका शिकार बन कर स्त्रीके स्वास्थ्य पर कभी विचार ही न करे। पुरुषको यह भूल नहीं जाना चाहिये कि स्त्रीके प्रति उसके सांसारिक और आध्यात्मिक कर्तव्य हैं जिनका पालन धैर्य, सन्तोष, नम्रता और सत्यनिष्ठाके साथ कर सकता है। जहाँ तक हो सके पतिको स्त्रीको अपने साहचर्यका आनन्द देना चाहिये। परिस्थिति अनुकूल हो तो देश-विदेश, घर और प्रवास, यात्रा या तीर्थ-पर्यटनमें सदा सर्वत्र स्त्री को साथ रक्खे, क्योंकि इससे शारीरिक और मानसिक दोनों ही सन्तुष्टि मिलती है। इससे अनप्रयास स्त्रीका अनुभव भी बढ़ जाता है और इस समय हमारा हिन्दू-समाज अपने अर्द्धाङ्गको जिस कूप-मण्डूकतामें रक्खे हुए है, उससे बाहर निकल कर हिन्दू स्त्रियाँ संसारको अधिक समझने लगेंगी।

प्रायः पुरुष अपनी थोड़ी सी सङ्कीर्णता, थोड़ेसे अनाड़ीपन या अनुभवहीनताके कारण अपनी स्त्रीके प्रति अनुदार भाव रख लेने के कारण और उससे अधिकाधिक खुला और स्पष्ट व्यवहार न रखनेके कारण सन्देहका शिकार बन जाता है और इस प्रकार वह सन्देह और अविश्वासकी दीवार ऊँची होने लगती है। आरम्भमें ही इस बातकी सावधानी रखनी चाहिये कि इस प्रकारके प्रसंग न उठ सकें, क्योंकि इससे गार्हस्थ्य-जीवनका माधुर्य लुप्त हो जाता है। शान्ति, क्षमा और उदारता पुरुषकी शोभा है। इसीके बल पर वह स्त्रीकी बहुत-सी त्रुटियोंको दूर कर सकता है। सद्गुणोंका आंशिक अभाव प्रेम दूर कर देता है; किन्तु यदि सद्गुणोंके साथ प्रेमका

पूर्ण प्रभाव दम्पतिमें छा गया तब तो फिर परिवार स्वर्ग तुल्य हो जाता है।

जिन नवयुवकोंका विवाह अभी हालमें ही हुआ है, उन्हें यह भूल नहीं जाना चाहिये कि उन्होंने विवाहके समय एक दूसरेसे किसी बातका दुराव या छिपाव न रखनेकी प्रतिज्ञा की है और जीवन-क्षेत्रमें उस प्रतिज्ञाको कार्यान्वित करनेकी आवश्यकता होती है। यह समझना भूल है कि स्त्रीसे सब बातें छिपा रखनी चाहियें। जीवनकी प्रत्येक समस्याके साथ स्त्री-पुरुषका समान सम्बन्ध होता है, इसलिये किसी बातको रहस्य बना कर स्त्रीसे छिपा रखना वाञ्छनीय नहीं। यदि कोई भूल हो गयी हो तो उसे स्वीकार कर लेनेमें ही बड़प्पन है। इससे घरमें सुख और शांति की वृद्धि होगी। यदि दम्पतिके बीचमें कोई तीसरा व्यक्ति पड़ कर इधरकी बात उधर लगाये या मनोमालिन्य उत्पन्न करनेका प्रयत्न करे तो उसे अपने मार्गसे अलग कर देना ही श्रेयस्कर होगा।

स्त्री-पुरुषके आचार-व्यवहार बोल-चाल, और धर्म-कर्ममें एकता और सामंजस्यका होना आवश्यक है, क्योंकि इन बातोंका वैपरीत्य दोनोंके जीवनको दुःखी बना देता है, यही कारण है कि जो लोग अन्तर्प्रांतीय या अन्तर्जातीय विवाह करके काम-वासना, आर्थिक लाभ या ख्यातिकी आड़में असंकुचिता और सुधार का आदर्श रखनेके लिये आगे बढ़े हैं, उनका वैवाहिक जीवन असफल रहा है। शारीरिक और आत्मिक साहचर्यके लिये यह आवश्यक है कि पतिकी भाषा ही पत्नीकी भाषा हो और उसका धर्म तथा

उनका आचार-व्यवहार पत्नीके लिये आदर्श हो। ऐसा न होकर जहाँ एक बंगाली लड़की किसी पंजाबीसे ब्याही गयी है, या मद्रासी लड़की किसी बंगाली से ब्याही गयी है अथवा बंगाली लड़की किसी मद्रासीसे ब्याही गयी है, वहाँ कुछ दिनों तक केवल कामोत्तेजन-जन्य प्रेम हो जानेके अतिरिक्त उनमें आत्मिक सान्निध्य नहीं वह सकता, न उनके बाल-बच्चे ही आदर्श या एक प्रान्त या समाजके प्रतिनिधि स्वरूप हो सकते हैं। ऐसी अवस्थामें यदि भूलसे या और किसी कारण या परिस्थितिवश किसी युवकका विवाह इतर प्रान्त या अन्य भाषा-भाषी प्रान्तकी लड़कीसे हो ही गया है, तो उसे यथासम्भव उपर्युक्त अन्तर दूर कर देनेका पूर्ण प्रयत्न करना चाहिये।

स्त्रीमें यदि पुरुष महत्त्वाकांक्षा देखे तो उसे दबाना नहीं चाहिये, बल्कि उसकी प्राप्तिके लिये सचेष्ट होकर उसमें सहायक बनना चाहिये। प्रायः ऐसा हुआ है कि विवाहित लड़कियोंने श्वसुर-गृहमें जाकर ही कितने नवीन गुण सीखे हैं। यदि स्त्री कोई नयी कला सीखनी चाहे तो पतिको भरसक उसका प्रबन्ध करनेकी चेष्टा करनी चाहिये। इससे दाम्पत्य-स्नेहकी वृद्धि होती है और पुरुष सहज ही स्त्रीका अधिकाधिक शारीरिक एवं आत्मिक सहयोग प्राप्त कर सकता है।

पुरुष जब स्त्री-सम्बन्धी किसी बात पर विचार करे तो उसे स्त्रीके ही दृष्टिकोणसे सोचना चाहिये। सम्भव है कि जो बात उसकी दृष्टिसे उपयोगी या उचित नहीं प्रतीत हो रही हो, वह स्त्रीके दृष्टि-कोणसे उपयोगी और उपयुक्त हो।

इन्द्रिय परायणता और सदाचार

भारतमें इस समय प्रत्येक विषयमें विचारोंका अद्भुत संघर्ष चल रहा है। काम विज्ञान और सदाचारके सम्बन्धमें भी यह मत-भेद बहुत विस्तृत हो चला है। पुरानी पीढ़ीके लोग जहाँ काम-विज्ञानकी बातोंसे नाक-भौं सिकोड़ते हैं और इस विषयको गुह्य और गोपनीय कह कर इस दिशामें नितान्त अनभिज्ञ रहना वाञ्छ-नीय समझते हैं, वहां नयी पीढ़ीके युवक ऐसे मनचले और अमर्यादित होते जा रहे हैं कि वे इस विषयको अधिकाधिक प्रकाशमें लाना चाहते हैं। वास्तवमें दोनों ही गलती पर हैं, क्योंकि काम-विज्ञानकी जानकारी आवश्यक होनेके कारण उसकी गोपनीयता सापेक्ष नहीं है। न यह प्रयोजनीय विषय ऐसा है जिसका प्रदर्शन

इस रूपमें हो कि मर्यादा और सीमाका ध्यान ही न रक्खा जाय। ऐसी अवस्थामें बीचका मार्ग ही श्रेयस्कर है। जिस पर चल कर प्रत्येक युवकको कमसे कम इतना ज्ञान तो हो जाय कि जीवनकी इस महान् समस्याका तथ्य क्या है। यह वस्तु क्या है और इसकी प्रयोजनीयता और उपयोगिता कहाँ तक वाञ्छनीय है।

संसारमें जिस प्रकार धर्म वन्दनीय एवं आचरणीय और अर्थ उपार्जनीय है उसी प्रकार काम-विज्ञान सम्पादनीय है, क्योंकि इन तीनोंके सम्यक् सामंजस्य और पुष्टिसे ही मानवताका पूर्ण विकास हो सकता है। इनमें से किसी एक पर जितना ही अतिरिक्त ज़ोर दिया जायगा, दूसरे दो उतने ही अधिक कमज़ोर होंगे और मानवतामें उतनी ही त्रुटि आजायगी। इन तीनोंकी सिद्धिसे ही चौथे पदार्थ—मोक्षका साधन हो सकता है, इसलिये इन तीनोंमेंसे किसी एक की कमी भी मोक्ष-साधनमें बाधक सिद्ध होती है। यहाँ हमें केवल काम-विज्ञानके सम्बन्धमें ही विचार करना है अतः उन्हींके सम्बन्धमें कुछ कहा जायगा।

काम-विज्ञानका मतलब है पुरुष और स्त्रीके शारीरिक संयोग सम्बन्धी स्वाभाविक आकांक्षा और उसकी परितृप्ति की व्याख्या—एक खास अवस्था पर पहुंच कर प्रत्येक युवकमें काम-सम्बन्धी अभिलाषाओंका उदय होता है। कुछ को उनके विकसित होनेका अवसर मिलता है और कुछ को नहीं। यही वह समय है जब काम विज्ञान सम्बन्धी बातोंकी जानकारी आवश्यक है, क्योंकि बिना इस विषयकी जानकारीके सम्भोग करना पूर्णतः पाशविक है।

क्योंकि इससे स्त्री-पुरुषको परितृप्ति नहीं मिलती। इस विषयकी जानकारी प्राप्त करनेके लिये शारीरिक अवयवोंका ज्ञान और मैथुन-प्रक्रियाका मनपर प्रभाव जानना आवश्यक है। वीर्यका विकास शारीरिक अवयवोंमें होता है। आहार-रससे रक्त, रक्तसे माँस, माँससे मेद, मेदसे अस्थि, अस्थिसे मज्जा, मज्जासे वीर्य और वीर्यसे ओजकी उत्पत्ति होती है। इस प्रकार वीर्य बननेमें ३० दिन लगते हैं। वीर्य-वाहिनी शिरा अण्डकोशमें है। अण्डकोशके उतर-चढ़ावसे वीर्यकी अवस्था आती जाती है। काम कला कोश गुह्य-द्वारके भीतर है और लिंग-मूल पर है। योग-शास्त्रमें इसका नाम स्वाधिष्ठान चक्र रक्खा गया है। वीर्यमें जीवाणु होते हैं, जिन्हें अंग्रेज़ीमें स्परमेट्रूज़ कहते हैं। उन्हींसे सन्तानोत्पत्ति होती है। अण्डकोश और काम-कला कोशके दो कार्य हैं, एक अधोरेत और दूसरा ऊर्ध्वरेत। ऊर्ध्व-रेतका अर्थ है वीर्यको शरीरके रक्त-संचालनके साथ मिला देना, जिससे ओजकी उत्पत्ति होती है। ओजसे हृदयमें प्रेरणा उत्पन्न होती है और साथ ही व्यक्तित्त्व, कान्ति, सहनशक्ति तथा दृढ़ताकी वृद्धि होती है। साथ ही इसके परिणाम स्वरूप अवस्था स्थायी बनती है। इससे स्नायु और अवयवोंका स्वाभाविक उपचार होता रहता है। ओजका दूसरा कार्य वीर्यको शरीरके बाहर निकाल देना है। जिन नाड़ियों पर मस्तिष्कका नियंत्रण होता है वे आश्रित नाड़ियों और जिन पर नियंत्रण नहीं होता वे अनाश्रित नाड़ियाँ कहलाती हैं। मैथुनके समय आश्रित नाड़ियोंके कार्य करते हुए एक समय आता है जब कि अनाश्रित नाड़ियाँ काम करने लगती

है—इसी समय वीर्यपात होता है। उस समय मनुष्य अपने आपको नहीं रोक सकता। अधिक वीर्य क्षय होने पर अनाश्रित नाड़ियाँ जल्दी काम करने लग जाती हैं—यहाँ तक कि चरम अवस्थामें मैथुनके स्मरण मात्रसे वीर्य-क्षय हो जाता है।

मनोवैज्ञानिक क्रिया

अत्यधिक मैथुन इच्छाके ऊपर अधिकार नहीं रखता। जैसे नशेबाज़ अनुत्तरदायित्वपूर्ण कार्य करता है वैसे ही अत्याधिक कामासक्त भी। किन्तु साथ ही कितने ही प्रकारके आनन्द ऐसे हैं जो बिना मैथुनके पूर्ण मात्रामें नहीं प्राप्त होते। हर्ष, सुख, स्नेह सब मैथुनके अन्तर्गत अपने पूर्ण विकासको प्राप्त होते हैं। जैसा कि ऊपर कहा गया है मैथुन दो प्रकारके हैं एक अन्तस्थ और दूसरा बहिरस्थ।

अन्तस्थ मैथुन—जिस समय वीर्य रक्त-स्रोतके साथ मिलकर ओज की उत्पत्ति करता है, सारे शरीरमें, और विशेष करके मस्तिष्कके स्नायुओंमें एक प्रकारका रक्त—प्रवाह होता है। इससे आनन्द उपलब्ध करनेकी शक्ति उत्पन्न होती है। इसीसे रुचि, मानसिक या शारीरिक रसोंके आस्वादन करनेकी शक्ति, दसों इन्द्रियोंके अधीन कर्मोंमें आसक्ति उत्पन्न होती है, जिसका कि चरम परिपाक महत्वाकांक्षाको उत्पन्न करता है। रोमाञ्च, विकसित हृदय, उत्फुल्लता, मनोनिवेश, दूसरोंकी प्रतिभाका आदर आदि गुण इसीसे उत्पन्न होते हैं। बहिरस्थ और अन्तरस्थ मैथुनमें एक अनुपातिक सम्बन्ध है; परन्तु इसका यथार्थ गणित-सम्बन्ध निकालना असम्भव है,

क्योंकि प्रत्येक व्यक्तिका स्वभाव भिन्न होता है। इस अनुपातको न समझनेके कारण ही ब्रह्मचर्य और सदाचार पर ज़ोर दिया जाता है। अन्तरस्थ मैथुनकी क्रिया-शक्ति बाह्य मैथुनके कम करनेसे ही बढ़ती है—साथ ही ब्रह्मचर्य-पालन भी आवश्यक है।

जब कभी मनुष्य बाह्य मैथुन-रत होता है तो कुछ तो वीर्यके पूर्ण परिपाक होनेके कारण और कुछ अनाश्रित नाड़ीके देरसे कार्य करनेके कारण तथा आश्रित नाड़ीमें यथेष्ट शक्ति होनेके कारण मनुष्य पूर्ण सम्भोगका आस्वादन कर सकता है। वीर्यके बाहर निकलनेसे जो नुकसान पहुँचता है, उसकी पूर्ति अन्तरस्थ मैथुनकी पूर्णता होनेके कारण उसकी पूर्ति होकर अनिर्वचनीय आनन्दकी प्राप्ति होती है—साथ ही अन्तरस्थ मैथुनकी क्रियाकी द्रुति बढ़ जाती है। दूसरी बात यह है कि स्त्रीकी योनिमें जो रस-प्रवाह होता है उसका कुछ अंश पुरुषका लिंग सोख लेता है जिससे लिंगके स्नायुकी दुर्बलताकी पूर्ति हो जाती है। इस प्रकार वीर्य और ओजके साथ मनुष्यका चारित्रिक सम्बन्ध कितना घनिष्ट है, इसे सहज ही समझा जा सकता है। स्मरणशक्ति, बुद्धि, प्रेरणाशक्ति, स्वच्छ हृदय, करुणा, दया, क्षमा, उत्साह, महत्त्वाकांक्षा, सहानुभूति, सहनशक्ति, आपत्ति-कालमें विचलित न होनेकी शक्ति, तेज, दीप्ति, कान्ति, वयस्थापन और मौलिकता आदि सद्गुण वीर्य और ओज पर ही निर्भर करते हैं।

असद् और अप्राकृतिक प्रकारसे इन्द्रिय-तृप्ति करनेके कारण तृप्तिकी पूर्ति नहीं होती और मनमें जो तृष्णा रह जाती है, उसके

कारण कुछ मानसिक ग्रन्थियाँ (Psychological complex) पड़ जाती हैं और वे वृत्तियाँ बन कर अर्द्ध सुप्त अवस्थामें बदल जाती हैं और उनके विषयमें मन, स्मृति आदिको ज्ञान नहीं रहता, बल्कि मन, बुद्धि, स्मृति आदि उन ग्रन्थियोंसे परिचालित होते रहते हैं। इन ग्रन्थियोंके कारण मनुष्यमें कुटिलता आ जाती है; वह दूसरों पर अविश्वास और सन्देह करने लगता है—विशेषतः अपने प्रिय पात्रों पर पहले। एक तो तृष्णाकी अतृप्तिके कारण ऐसा होता है, दूसरे उस (तृष्णा) की पूर्तिके लिये अन्तरस्थ मैथुनका नाश होने पर मनुष्य बहिरस्थ मैथुनका सहारा लेता है कि शायद इस बार उसकी पूर्ति हो जाय। उनके बुद्धि, विवेक, विचार सभी लिंगोन्मुखी हो जाते हैं। इससे सैकड़ों प्रकारके मानसिक विकार उत्पन्न होते ही वह बीसों रोगोंका घर बन जाता है। ऐसे लोग व्यभिचार विषयक बातें, अश्लील कहानियाँ, नग्न चित्र, अगम्य गमनकी कथा और अप्राकृतिक मैथुनके किस्सोंकी ओर अधिक आकृष्ट होते रहते हैं और समाजके डरसे या यदि वे लोगोंमें धार्मिक पुरुष प्रसिद्ध हों तो ऐसे ऋषि-मुनियोंकी कथा शुरू करके उसके विरुद्ध तर्क-वितर्क करके आनन्दका अनुभव करते हैं, जिनकी कामुकता पुराण-प्रसिद्ध है। संसारमें ऐसे लोगोंकी संख्या दिन पर दिन बढ़ती ही जा रही है। बहुत-से सुधारक भी इस कोटिमें परिगणनीय हैं और बहुत-से बुड्ढे-बुढ़ियाँ तक दूसरोंके घरोंकी बुरी और गोपनीय बातोंका भण्डाफोड़ करके आनन्द प्राप्त करते हैं। यह भी उपर्युक्त प्रकारकी मानसिक ग्रन्थिका ही परिणाम है। सदाचारकी आड़में दुराचारका

भण्डाफोड़ करनेके बहाने उसमें रस लेने-लिवानेका यह रोग एक प्रकारकी बीमारी है, जिसकी चिकित्सा मनोविज्ञानके आचार्योंने कठिन बतलाई है।



एक नई समस्या

ब्रह्मचर्यकी महिमा सदासे सुनते-सुनते लोगोंके कान थक गये। इस पर ठीक तौरसे विचार किया जाय तो ब्रह्मचर्य रखनेके उपाय अभी तक नहीं बतलाये जा सके। यदि बतलाये भी गये तो अक्रियात्मक, मूर्खतापूर्ण और सारहीन होनेके कारण उन्हें न तो कोई युवक कर सकता है न स्वयं बतलानेवाले ही कर सकते हैं। धर्म और आदर्शकी आड़में व्यर्थ प्रपञ्च करके, किसीको लाभ हो या नहीं, नाम कमानेकी चेष्टा करते हैं। ब्रह्मचर्य-पालनमें सफल होनेके लिये आजकल इस प्रकारकी जो विधियाँ बताई जाती हैं, वे निम्नलिखित हैं :—

(१) मनको शुद्ध रखना।

(२) जिस समय किसी असद् भावनाकी ओर मन जाता हो, उसे खींच कर सद्भावनाकी ओर ले जाना।

(३) लँगोट बाँधना।

(४) सिनेमा-नाटक न देखना, उपन्यास, नाटक शृङ्गारात्मक काव्यादिका न पढ़ना।

(५) किसी जानवरका जोड़ा न पालना।

(६) सदा धार्मिक ग्रन्थ पढ़ते रहना।

(७) जननेन्द्रियकी ओर ध्यान ही न देना।

(८) गायन-वादन करने और सुननेसे भी बचते रहना।

(९) सुन्दरी स्त्री—यहाँ तक कि अपनी सुन्दरी कन्याके साथ भी एकान्तमें न होना।

(१०) उपवास करना और कबाब चीनी तथा कपूर आदिका सेवन करके काम-वासनाको रोकते रहनेकी चेष्टा करना।

(११) अत्यधिक व्यायाम करना और ऐसे कार्योंमें लगे रहना जिससे चुप रह कर कुछ सोचनेका अवसर ही न मिले।

(१२) यथासम्भव बहुत कम सोना।

इन उपायोंमें-से यदि सच पूछा जाय तो एक भी व्यावहारिक नहीं है। इन पर क्रमशः विचार कीजिये :—

(१) मनको शुद्ध रखना इतनी बड़ी बात है कि साधारण क्या, बड़ेसे बड़े ऋषि-महर्षियोंको चक्करमें पड़ना पड़ा था। ऐसे असाध्य उपायका परामर्श देना न देना बराबर है। जो लोग इस विषयमें उपदेश देते हैं, वे स्वयं भी मन पर वश नहीं कर चुके होते।

(२) असद्भावनाके उठने पर अर्थात् जिस समय मनमें कोई कुकर्म करनेकी इच्छा उत्पन्न हो तो मनको उधर जाने ही न दे। किन्तु यह बात तो सभी जानते हैं कि कुकर्म नहीं करना चाहिये, पर मनको मोड़ लेना, मनको वशमें करनेमें कम कठिन नहीं है। गीतामें अर्जुनने यही प्रश्न किया था, किन्तु कृष्णजीका उत्तर उतना महत्त्व-मण्डित नहीं हो सका, जितना अर्जुनका प्रश्न। इसी प्रकार एक बड़े महात्माने लोगोंको उपदेश देते हुए कहा था कि जिस मनमें दुर्भावना उत्पन्न हो तो उसे ही अपनी मातृ-मूर्त्तिकी कल्पना कर ले। यदि किसीमें यही शक्ति हो कि वह प्रत्येक सुन्दरी स्त्रीको अपनी माता समझने लगे, यदि मनमें ऐसी भावना लाई जा सके कि जिसे चाहे माँ मान ले तो ऐसी कुभावना ऐसे मनमें उत्पन्न ही क्यों हो?

(३) लँगोट बाँध कर पशु-बलके द्वारा शरीरके एक अवयव को अवरुद्ध कर लेनेसे उस स्थानमें रक्त-संचालन क्रिया बन्द हो जाती है, किन्तु इन्द्रिय कामोद्दीपन, मनकी वासना और कामकला कोशसे सम्बन्ध रखती है, ऐसी अवस्थामें भीतरसे उत्तेजना होती जाय और बाहरसे अवयव कसकर बंधा हो तो इसके फल-स्वरूप इन्द्रिय वायु-बद्ध होकर रोगका स्थल बनती है—विशेष कर वे नाड़ियां जिनके साथ अण्डकोश, कामकला कोश, नाभि और मूत्र कोशका सम्बन्ध है, कुपित होकर नाना प्रकारके रोग उत्पन्न करती हैं। यदि मानसिक वासना इस ओर न हो तो लँगोटकी कोई आवश्यकता नहीं, और यदि मनोवृत्ति इस ओर हुई तो लँगोटके अतिशय उपयोगसे कोई लाभ नहीं।

(४) सिनेमा, नाटक न देखना और उपन्यास, नाटक न पढ़ना आधुनिक युगके युवकोंके लिये असम्भव ही है—विशेष कर ऐसी अवस्थामें जब कि आज कलकी पाठ्य पुस्तकों तकमें शृङ्गार रसात्मक कविताएँ और कहानियाँ होती हैं। संसारके साहित्य में सर्वत्र शृङ्गार रसका स्थान है। धार्मिक ग्रन्थोंमें भी शृङ्गार रसकी कमी नहीं है। स्थान-स्थान पर अश्लीलता और वीभत्सता की कमी नहीं है। रसोंकी ओर मनुष्यकी जो स्वाभाविक प्रवृत्ति है उसे रोकना प्रकृतिकी बाढ़को रोकनेके समान है। सन्मार्ग पर चलना जितना कठिन है, संगी-साथियोंका उपहास सहना उससे भी कठिन है। जो नाटक-सिनेमा नहीं जाते और उपन्यास तथा काव्य नहीं पढ़ते, उनके मस्तिष्कमें किसी प्रकारके वर्तमान वातावरणमें रोग होनेकी अधिक सम्भावना होती है, क्योंकि आजकलके शुष्क जीवनमें प्रवृत्त रह कर मनोरञ्जनसे बिल्कुल मुंह मोड़ लेना मानो मानसिक अवसादको निमंत्रण देना है। इस तरहका वहिष्कार करने वालोंका बुद्धिसे सम्बन्ध रखना आश्चर्यजनक ही है। नकारात्मक शिक्षा इस देशमें बहुत प्रचलित हो चली है। यदि नशा करनेकी ओर मन जाता हो तो नशा न मिले ऐसे स्थान पर रहो, यदि स्त्रियोंकी ओर मन आकर्षित होता हो तो स्त्री-शून्य स्थान पर रहो। गत सत्याग्रह संग्राममें भी ताड़ीकी रोकके लिये ताड़के वृक्ष काटे गये। यद्यपि बेचारे वृक्षोंने किसीका कुछ नहीं बिगाड़ा था और गुड़के लिये रस आदि लेकर उनका सदुपयोग भी होता था। इन सब कार्योंकी जड़में अपने दोषको स्वीकार न करके दूसरों पर

दोपारोपण करनेकी प्रवृत्ति काम करती है जो यौवनहीन-वीर्यताका लक्षण है।

(५) जानवरोंके जोड़ेको कौन कहे, प्रत्येक युवक मनुष्योंके जोड़ोंको पालता नहीं तो नित्य देखता अवश्य है। घरमें और बाहर चारों ओर शादी-ब्याह होते रहते हैं, बच्चे भी पैदा होते रहते हैं—पति पत्नीके साथ जो सम्बन्ध होते हैं उन्हें भी सब जानते हैं, ऐसी अवस्थामें इस बातका ज्ञान कैसे रोका जा सकता है। इस प्रकारका उपदेश देने वालोंको जानना चाहिये कि आज कल स्कूल कालेजों, शरीर शास्त्र और उत्पत्ति शास्त्र (Biology) पढ़ाये जाते हैं और इन्द्रिय विषयक गालियां बच्चे थोड़ी उम्रसे ही सुनते रहते हैं, फिर उन्हें इस विषयके ज्ञानसे वञ्चित कैसे रक्खा जा सकता है।

(६) धार्मिक ग्रन्थ अवश्य पढ़ें, पर चौबीसों घण्टे उसमें कैसे मन लगाया जा सकता है। आजकलके व्यस्त संसारमें लोगोंको जीवन यापनके लिये और भी बहुतसे काम हैं, इसलिये धार्मिक ग्रंथ लिये बैठे रहनेसे कैसे काम चल सकता है। धार्मिक प्रवञ्चकोंकी भी कमी नहीं है। जिस प्रकार किसी वस्तुको भूलनेकी जितनी ही चेष्टा की जाय उतना ही उसका स्मरण बढ़ता है, उसी प्रकार इन्द्रिय वृत्तिके विरुद्ध जितनी ही बातें कही जायँगी, इन्द्रिय-लोलुपता भी उतनी ही बढ़ती जायगी। ऐसे हजारों बगुला भगत देखे गये हैं जो या तो नामके डरसे या किसी संस्थासे सम्बद्ध होनेके कारण ब्रह्मचर्य-पालनकी चेष्टा करते हैं, परन्तु दुश्चरित्रतापूर्ण विषयोंको

लेकर विशेष आलोचना किया करते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि धार्मिकताके नाम पर भी धब्बा लगता है।

(७) जननेन्द्रियकी ओर उपेक्षा-भाव रखना और उसके साफ आदि करनेमें बेपर्वाही करनेसे भी ब्रह्मचर्य-पालनमें बड़ी बाधा पड़ती है। खुले स्थानोंमें नहानेकी प्रथा भी इन्द्रिय-स्वच्छताकी बाधक है। लज्जाके कारण लोग गुप्तेन्द्रियोंको अच्छी तरह स्वच्छ नहीं कर सकते। दाद, पसीनेकी बदबू, खुजली आदि इसीके कुपरिणाम हैं। भारतमें धनकी दृष्टिसे उच्च श्रेणीके लोगोंमें भी इसके फल-स्वरूप एक आदत देखी जाती है और वह है सबके सामने हाथ डालकर गुप्तेन्द्रियका खुजलाना। सफाई न करने और गुप्तेन्द्रियकी अवहेलना करनेसे ही इस आदत की जड़ जमती है।

(८) जिस कलाको शास्त्रोंने 'न विद्या संगीतात्परा' कह कर उल्लेख किया है, उसको बुरा समझना और धिक्कारना मनुष्यताको तिलाञ्जलि देनेके समान है। सुरुचि-विरोधी गाने अवश्य ही वर्जनीय समझे जायँ, क्योंकि यह तो साधारण शिष्टाचारसे ही सम्बन्ध रखता है, किन्तु सुरुचि पूर्ण गायन तो ब्रह्मचर्य-पालनमें सहायक ही होंगे।

(९) सुन्दरी कन्या तकके साथ न बैठनेकी शिक्षा जिस समाज में होती है, उसका अधःपतन कितना हो चुका है, इसका अनुमान सहज ही में किया जा सकता है। अपने मनकी वृत्तियोंको न रोक दूसरेको रोकनेका प्रयत्न करना कितना गर्हित है। जिसका मन इतना जघन्य हो ऐसे मनुष्यके लिये समाजमें कोई स्थान होना भी

अवाञ्छनीय है। ऐसा उपदेश करने वालोंको निःसंगमें छोड़ देना ही उचित है।

(१०) उपवासके द्वारा शरीरको दुर्बल बनाकर केवल इन्द्रिय ही को क्यों, जीवनकी गति भी रोकी जा सकती है। ऐसे निर्जीव मनुष्योंको संसारके किस कार्यमें प्रेरणा दी जा सकती है। अत्यधिक भोजन करने वालोंके लिये कभी-कभी उपवास करना अच्छा ही होता है, परन्तु इन्द्रियकी गतिको रोकने लिये यदि पेट पर कुठाराघात किया जाय तो अन्यान्य अवयव-मस्तिष्क, बुद्धि, स्मरणशक्ति और धारणा आदि पर कुठाराघात हो जाता है। ५-६ इञ्चके चर्मदण्डको रोकनेके लिये कितना तूल-तमाल ! फल कुछ भी नहीं। औषधि आदिके प्रयोगसे रोग दूर करना तो समझमें भी आ सकता है, पर किसी इन्द्रियका वेग और बल रोकना बिल्कुल अप्राकृतिक है।

(११) व्यायाम द्वारा शरीरको अत्यधिक थका देनेसे मस्तिष्क और मन बुद्धि भी थक जाते हैं—इससे तो निपुण डाक्टर से अण्डकोश निकलवा कर बधिया बन जाना ही अच्छा है। थक कर भी मनुष्यके विचार निष्क्रिय नहीं होते। थक जाने पर इन्द्रिय लोलुपताका नाश नहीं होता। किसी भी कार्यमें लगे रहने पर भी कामोत्तेजना हो सकती है।

(१२) कम सोनेसे भी कोई लाभ होनेके बदले उलटे हानि ही होती देखी गयी है।

रस और जीवनका सम्बन्ध

रसोंका उपयोग मनुष्यमात्रके लिये एक काव्यमयी शक्ति प्रदान

करता है जिससे जीवन-संग्रामके घात-प्रतिघात सहनेकी शक्ति बढ़ती है। ज्ञान, विज्ञान, आदर्श महत्त्वाकांक्षा, स्वर्ग, मुक्ति, समाज, धर्म, राजनीति ये सभी रसानुभूतिके दास हैं। जीवन-यौवन जरा-मरण काल पर नहीं, घटनाचक्रके ऊपर निर्भर करते हैं और यह वातावरण जीवमात्रकी रसानुभूतिसे सम्बन्ध रखता है। मनुष्यकी आवश्यकता-पूर्तिके लिये बुद्धि ही एक यंत्र है और बुद्धि रसोंसे सम्मिश्रित है। यदि बुद्धि नीरस हो तो जब तक वह अपने अहंकार का साथ न छोड़ देगी तब तक मनुष्यके हृदय-सिंहासन पर उसका कोई स्थान नहीं होगा। चीनी स्त्रियोंके लोहेमें जकड़े हुए पैरोंके समान अब तक लोकमत और समाज-बन्धनसे जकड़ी हुई लालसा-उद्दाम काम वासनाका विकास नहीं हो पाता था, परन्तु अब स्वाधीनता भेरीकी आवाज़ सुनकर असंख्य सुप्त लिप्साओंके साथ लालसा भी वयः प्राप्त हो चुकी है। निर्जीव, निश्चल, सदाचारके राजसिंहासन पर शक्तिशाली संचरणशील विधायक अनुभवका प्रजातंत्र राज्य स्थापित हो गया। वैयक्तिक रसोंके साथ सामाजिक संघर्षके परिणाम-स्वरूप मनुष्यके विचारोंमें एक सन्धि-स्थानकी उत्पत्ति हुई है। वह आँख खोलकर ज्ञान और बुद्धिको परिचालित करना चाहता है—वंश परम्परागत नकारात्मक निष्क्रिय बातोंका अनुकरण करनेको अब वह प्रस्तुत नहीं हैं।

वेश्यागमनकी प्रवृत्ति और कामाशक्ति

वेश्यागमन कामवासनाकी तमसावृत कविता है। भूत कालका आदर्श था त्याग और वैराग्य, वर्तमान कालका आदर्श त्यागका

उपदेश देकर स्वयं आसक्तिमें लीन रहना ही चला है, किन्तु भविष्य का आदर्श है विवेचनापूर्ण विधायक आसक्तिका सदुपयोग—किसी महत्त्वाकांक्षाकी पूर्तिके लिये अनुपयोगी वस्तुओं और अड़चन डालने वाले विषयोंका त्याग। पुरुषमात्र ही स्त्रीको एक ओर मातृरूपिणी जगन्माताके रूपमें आराधना करता है, दूसरी ओर काम वासनाको चरितार्थ करनेके लिये उसे यंत्र स्वरूप समझ कर लोलुप दृष्टिसे आलिंगन करनेको दौड़ता है। इन दोनों चरम विरोधी मूर्तियोंकी कल्पनाके बीचमें पड़ कर जो आत्म-संघर्ष प्रत्येक युवकके अन्तः-करणमें उत्पन्न होता है, उसको समझनेके लिये चाहिये उदार हृदय, विशाल शक्ति, गम्भीर अनुभव, अदम्य उत्साह और अथक परिश्रम। उसको रास्ता बतानेके लिये शुष्क, नीरस, उपदेश नहीं, मृत्युके बाद नरक नहीं; परन्तु सहानुभूति पूर्ण परिचालन शक्ति है। उसके जीवन की सम्पूर्ण स्फूर्तियोंको एक अंग के पद-स्खलनके लिये कुचल देना महामूर्खता है। जिस संघर्षमें पड़ कर देवाधिदेव महादेव भी डावाँडोल हो गये थे, उसी संघर्षमें आजका कीटाणु-प्रमाण निर्जीव नवयुवक जा रहा है—उसके पास भगवान् शङ्करका योग-बल नहीं, कोई गुरु और पथ-प्रदर्शक नहीं, शक्ति और साधना नहीं तथा चरित्र निर्माण का कोई आधार नहीं है। माता-पिता तक इन्द्रिय-सम्बन्धी विषयोंमें न कोई उपदेश देते हैं न दे सकते हैं। उसके लिये एक ही उन्मुक्त द्वार खुला हुआ है और वह है असत्संग जहाँ वह यौवनके हिलोलोंके विषयमें हृदय खोल कर प्रकट कर सकता है उसके लिये यह एक नया और अद्भुत अनुभव है। यही कारण है

कि वह हस्तमैथुनसे लेकर अप्राकृतिक मैथुन और फिर वहाँसे वेश्या के घर तक पहुँच जाता है। यदि इस दोषके लिये कोई अपराधी है तो वह है उसके पिता माता, शिक्षक, आत्मीय, स्वजन और समाज। "अच्छे बनो; शुद्ध बनो।" ये शब्द संसारमें आदि कालसे चले आ रहे हैं, परन्तु फिर भी सत्ययुगसे कलियुग आ ही गया, सदाचारियों से दुराचारियोंकी संख्या बढ़ती ही गयी। इसका कारण क्या है पाठक ही सोचें।

वीर्यका विकास

जीवनकी धाराको किसी विशेष मार्गमें प्रेरित करनेकी शक्ति होनेपर जीवन-पुष्प गोबरके ढेरपर भी प्रस्फुटित हो सकता है। इसके लिये शरीरको पूर्ण सावधानीसे काममें लाना चाहिए। शारीरिक अवयवोंमें वीर्यका विकास इस प्रकार होता है—आहारके रससे रक्त, रक्तसे माँस, माँससे मेद, मेदसे अस्थि, अस्थिसे मज्जा, मज्जासे वीर्य और वीर्यसे ओजकी उत्पत्ति होती है—इस प्रकार वीर्य बननेमें तीस दिन लगते हैं। वीर्यवाहिनी शिरा अण्डकोशमें है। अण्डकोशके उतार-चढ़ावसे वीर्यकी अवस्था जानी जाती है। कामकलाकोश गुह्यद्वाराके अन्दर और लिंगकी जड़में हैं। योगशास्त्रमें इसीका नाम स्वाधिष्ठान चक्र रक्खा गया है। वीर्यके जीवाणुओंको अंग्रेज़ीमें स्परमेट्रूज़ कहते हैं। उन्हींसे सन्तानोत्पत्ति होती है। अण्डकलाकोश और कामकलाकोशके दो कार्य हैं—अधोरेत और ऊर्ध्वरेत। ऊर्ध्वरेतका अर्थ है वीर्यको शरीरके रक्त-संचालनके साथ मिला देना जिससे ओजकी उत्पत्ति होती है। ओजसे हृदयमें प्रेरणा

शक्ति, व्यक्तित्व, कान्ति, सहनशक्ति और स्थापयिता शक्तिकी उत्पत्ति होती है तथा शारीरिक स्नायु और अवयवोंका स्वाभाविक उपचार होता रहता है।

रक्त और नाड़ियाँ

रक्तसे वीर्य बनता है। इसका दूसरा कार्य शरीरके बाहर वीर्यको निकाल देना है। नाड़ियाँ आश्रित (जिनपर मस्तिष्कका अधिकार है) और अनाश्रित दो प्रकारकी होती हैं। मैथुनके समय आश्रित नाड़ियोंके कार्य करते हुए एक समय आता है जब कि अनाश्रित नाड़ियाँ कार्य करने लगती हैं—उसी समय वीर्यपात होता है। उस समय मनुष्य अपने आपको नहीं रोक सकता। अधिक वीर्यरक्षा होनेसे अनाश्रित नाड़ियाँ जल्दी काम करने लग जाती हैं, यहाँ तक कि चरम अवस्थामें मैथुनके स्मरणमात्रसे वीर्यक्षय हो जाता है।

मैथुन और मनोवैज्ञानिक क्रिया

अत्यधिक मैथुन करनेपर इच्छाके ऊपर अधिकार नहीं रहता जिस प्रकार नशेबाज अनुत्तरदायित्त्वपूर्ण कार्य करता है, उसी प्रकार अत्यधिक कामासक्त भी। जितने प्रकारके आनन्द हैं, बिना मैथुनके प्राप्त नहीं होते। हर्ष, सुख, स्नेह—सब मैथुनान्तर्गत सुख हैं। जैसा कि ऊपर कहा गया है मैथुन दो प्रकारके होते हैं—एक अन्तरस्थ दूसरा बहिरस्थ। जिस समय वीर्य रक्ताणुओंके साथ मिलकर ओजकी उत्पत्ति करता है और सारे शरीरमें—विशेष करके मस्तिष्कके स्नायुओंमें एक प्रकारका रक्त प्रवाह होता है, तो उसे अन्तरस्थ मैथुन कहते हैं। इससे आनन्द उपलब्ध करनेकी शक्ति उत्पन्न होती

है। इसीसे रुचि,—मानसिक या शारीरिक रसोंके आस्वादनकी शक्ति और दसों इन्द्रियोंके अधीन कर्मोंमें आसक्ति उत्पन्न होती है, जिसका चरम परिपाक महत्त्वाकांक्षाको उत्पन्न करता है। रोमाँच, विकसित हृदय, उत्फुल्लता, मनोनिवेश दूसरोंकी प्रतिभाके प्रति आदर-भाव आदि गुण इसीसे उत्पन्न होते रहते हैं। बहिरस्थ और अन्तरस्थ मैथुनोंमें एक आनुपातिक सम्बन्ध है; परन्तु इसका यथार्थ गणित-सम्बन्धी सम्बन्ध निकालना असम्भव है, क्योंकि प्रत्येक व्यक्तिका स्वभाव भिन्न होता है। इस अनुपातको न समझनेके कारण ही ब्रह्मचर्य और सदाचार पर जोर दिया जाता है। मनोविज्ञानके क्रियात्मक ज्ञान तथा पर्यवेक्षण शक्तिके द्वारा इस सम्बन्धमें लेखक एक नवीन दृष्टिकोण रखता है—वह यह है कि अन्तमैंथुनकी क्रिया-शक्ति वाह्य मैथुनके कम करनेसे ही बढ़ती है—साथ ही ब्रह्मचर्यके रखनेसे जब कभी मनुष्य वाह्य मैथुन-रत होता है तो कुछ तो वीरतापूर्ण परिपाक होनेके कारण और कुछ अनाश्रित नाड़ीके देरसे कार्य करने तथा आश्रित नाड़ीमें यथेष्ट शक्ति होनेके कारण मनुष्य पूर्ण सम्भोगका आस्वादन कर सकता है और वीर्यके बाहर निकलनेसे जो हानि पहुँचती है, उसकी पूर्ति अन्तमैंथुनकी पूर्णता होनेके कारण एक अनिर्वचनीय सुखकी प्राप्तिके रूपमें होती है। साथ ही अन्तमैंथुनकी क्रियाको द्रुति बढ़ जाती है। इसके अतिरिक्त स्त्रीकी योनिमें जो रस-प्रवाह होता है, उसका कुछ अंश पुरुषका लिंग सोख लेता है जिससे लिंगके स्नायुकी दुर्बलताकी पूर्ति हो जाती है। इस प्रकार वीर्य और ओजके साथ मनुष्यका चारि-

त्रिक सम्बन्ध—कितना घनिष्ट है, इसे लोग समझ सकते हैं। स्मरण-शक्ति, बुद्धि, प्रेरणाशक्ति, स्वच्छहृदय, करुणा, दया, क्षमा, उत्साह महत्त्वाकाँक्षा, सहानुभूति, सहनशक्ति, दुर्भाग्यपर विचलित न होना ये सब परिपक्व वीर्य और ओजपर निर्भर करते हैं।

कामवासनाकी तृप्ति

असद् और अप्राकृतिक ढङ्गोंसे इन्द्रिय-तृप्ति पूर्णतः नहीं हो सकती और मनमें जो तृष्णा रह जाती है, उसके कारण कुछ मानसिक ग्रन्थियाँ पड़ जाती हैं और वे ग्रंथियाँ वृत्तियाँ बनकर अर्द्धसुप्त अवस्थामें परिणत हो जाती हैं तथा उनके विषयमें मन, स्मृति आदिको ज्ञान नहीं रहता, बल्कि मन बुद्धि, स्मृति आदि उन वृत्तियोंसे परिचालित होती रहती हैं। इन ग्रन्थियोंके कारण मनुष्यमें कुटिलता आजाती है। वह दूसरोंपर अविश्वास और सन्देह करने लगता है विशेषतः अपने प्रिय पात्रोंपर पहले। एक तो तृष्णाकी अतृप्तिके कारण ऐसा होता है,दूसरे उस तृष्णाकी पूर्तिके लिये आन्तरिक मैथुनका नाश करके बाह्य मैथुन का पुनः पुनः इस आशासे सहारा लिया जाता है कि शायद इस बार उसकी पूर्ति हो जाय। ऐसा करनेवालोंके बुद्धि, विवेक, विचार सब लिंगोन्मुखी हो जाते हैं। इससे सैकड़ों प्रकारके मानसिक विकार उत्पन्न होते हैं—और एक दोष उत्पन्न होनेपर शरीर बीसों रोगोंका घर बन जाता है। ऐसे लोग व्यभिचार विषयक बातें, अश्लील कहानियाँ नंगेचित्र, अगम्यगमनकी कथा और अप्राकृतिक मैथुनके किस्सोंकी ओर आकृष्ट होते रहते हैं और समाजके डरसे, या यदि वे लोगोंमें धार्मिक पुरुष प्रसिद्ध हुए तो ऐसे ऋषियोंकी कथाका ओट लेते हैं

और ऐसी-ऐसी कथाएँ कहना आरम्भ कर देते हैं जो काम-वासनाके शिकार हुए हैं। उनकी वासनाकी चर्चा कर करके उसके विरुद्ध तर्क वितर्क करके वह मानसिक सुखका अनुभव करते हैं। संसारमें ऐसे व्यक्तियोंकी अधिकता प्रतिदिन होती जा रही है। हमारे बहुतसे सुधारक तक इसी कोटिके हैं। गाँवोंका जिन्हें अनुभव है वे इस बातको जानते हैं कि वहाँ एक व्यक्ति दूसरेके घरकी चारित्रिक बातोंका भण्डाफोड़ करके अपने मनमें आनन्दका किस प्रकार अनुभव करता है। इस प्रकारकी बातें करनेवालोंकी मनोवृति ही इस बातकी सूचक है कि उनका चरित्र निम्नकोटिका है।

उपर्युक्त बातोंसे पाठक इस बातसे अवगत हो गये होंगे कि मनोविज्ञानने आज उन सभी बातोंको मनुष्यके मनका पर्दा फाश करके बाहर निकाल लिया है और आगतक समाजके जो व्यक्ति बाह्यरूपसे इन्द्रिय-परायणताको घृणाकी दृष्टिसे देखकर भीतर ही भीतर उसमें रत रहनेकी चोरी किया करते थे वे प्रकाशमें आ गये हैं और उनका वास्तविक रूप सुधी जनोंके समक्ष आगया—ऐसी अवस्थामें अब नवजागरित समाजकी भलाई इसीमें है कि वह अब इन्द्रिय-परायणताको परमगुह्य विषय कहकर उसपर नाक-भौं न सिकोड़े और उसकी आवश्यकता और उसके ज्ञानकी उपयोगिता स्वीकार करते हुए उसके महत्त्वको समझे। इसीमें मनुष्य जातिका कल्याण है और इसीमें दाम्पत्य-सुखका सार। *

* जिन्हें इस विषयको विस्तृतरूपसे जाननेकी इच्छा हो वे लेखककी 'आदि रसशास्त्र' नामक कामकला सम्बन्धी अभिनव और वैज्ञानिक तर्कयुक्त ग्रन्थ पढ़े जिसे, कलकत्ता पुस्तक भण्डार, शीघ्र ही प्रकाशित करेगा।

आदिरस (काम) शास्त्रकी जानकारी

विद्वानोंने काम-विज्ञानको आदिरस माना है। इसका कारण यह है कि इसका ज्ञान हुए विना सृष्टिकी वृद्धि हो ही नहीं सकती। प्रजननके विना प्रजा कहाँसे आ सकती है। ऐसे महत्त्वपूर्ण आदि रसको जनसाधारणने आज कल लज्जा और घृणाकी वस्तु समझ कर उसको पतित वना दिया है। जिस विषयके सम्यक् ज्ञान विना न तो सृष्टि-संचालन ही हो सकता है, न सांसारिक सुख ही सम्पादित हो सकता है, उसकी इस प्रकारकी घोर उपेक्षा नितान्त अवाञ्छनीय है। आदि रस शास्त्रको भी भारतवर्षमें संगीत-शास्त्रकी भाँति वहुत काफी समयसे त्याज्य क़रार दे दिया है और ये विद्याएँ अव वेश्याओं ही में रह गयी हैं। सौभाग्यवश धीरे-धीरे संगीत-विद्या

का उद्धार करनेकी ओर लोगोंका ध्यान गया है और अब धीरे-धीरे भद्र घरानेके लोग भी इस ओर रुचि प्रकट करते हुए सीखने-सिखाने की ओर प्रवृत्त होने लगे हैं। किन्तु आदि रस (काम) शास्त्रको अब भी घृणाका ही शिकार बनना पड़ रहा है। कितने परितापका विषय है कि जिस वस्तुके ज्ञान पर मनुष्य जातिका अस्तित्त्व निर्भर है उसीके प्रति वह ऐसे कुभावपूर्ण विचार रक्खे।

संसारमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष साधन का मुख्य उद्देश्य माना गया है। उनमें मोक्ष-जैसे पारलौकिक विषयमें अनन्त काल से ज्ञानी जनोंने असंख्य वाक्-वितण्डा, आलोचनाएँ तथा प्रत्यालोचनाएँ की हैं। इसी प्रकार धर्मके नाम पर बिना उसके मूल तत्त्वको समझे अगणित यथेच्छाचार, अन्ध विश्वास और कुसंस्कार संसार में प्रचलित हो गये हैं। अर्थके नाम पर भी संसारमें सहस्रों अनर्थ हम नित्य होते देख रहे हैं। लोग धर्मको आत्म-विकास और अर्थ को जीवन-यापनका साधन न मान कर उसकी मनमानी परिभाषा करने लगे हैं। मोक्षको भी आत्म-स्वतन्त्रता ही न मान कर उसको अधिकाधिक जटिल बनानेकी कोशिश करते हैं। जिस प्रकार इन तीन विषयोंको लोग मनमाने ढङ्गसे समझने लगे हैं, उसी तरह आदि रस या काम शब्दका अर्थ भी आज कल केवल सम्भोग और शृङ्गार माना जाने लगा है, किन्तु यदि यथार्थ रूपमें विचार किया जाय तो मालूम होगा कि 'काम' का अर्थ 'सम्मोहन' है, क्योंकि तन्मयताकी अनुभूति ही 'काम' या 'आदि रस' का सार है। इस प्रकार हम किसी भी वस्तुके मूल और प्रकृत अर्थ को न समझ कर

उसका वर्तमान विकृत रूप समझने लगे हैं और विचार-धाराओंकी शृङ्खला नष्ट हो जानेके कारण भावोंमें भी अधःपतन होने लगा है। इसी लिये हम किसी भी विषय पर अन्तः दृष्टि न डाल कर केवल उसके बाह्य अंगोंको ही महत्त्व देने लगे हैं। यदि मादक द्रव्य-सेवन से हानि होती है तो हम मदिरालयोंको नष्ट कर देने और ताड़के वृक्षोंको काट देनेका विचार तो करते हैं, पर मद्यसेवीकी विचार-धाराको बदल देने या मदिरा छुड़ानेके अन्य उपचारोंका अवलम्बन करनेकी चेष्टा नहीं करते। हम नगरोंके वेश्यालयोंको तोड़ देने पर पहले विचार करते हैं, पर नयी पीढ़ीके युवकोंकी बढ़ती हुई कामुकता के मूल कारणको दूर करने पर कभी विचार नहीं करते। इस बातको क्षण भरके लिये भी मनमें नहीं लाते कि हमारे युवकोंमें से धार्मिक भावना और उचित-अनुचितका ज्ञान क्यों मिटता जा रहा है। वह अपनी पत्नीसे सन्तुष्ट न हो कुत्सित, घृणित, रोग कीटाणुओंसे लदी हुई वेश्याओंके पास क्यों जाता है। यदि हम गम्भीर विचार पूर्वक इस पर ध्यान दें तो मालूम हो जायगा कि हमारे युवकोंको काम-कलाका ज्ञान नहीं है और वे अज्ञात रूपसे अपनी कुप्रवृत्तियोंके शिकार इसलिये बन जाते हैं कि उनके घरकी स्त्री कामकला-शून्य होनेके कारण उन्हें यथेष्ट रूपमें मुग्ध, उद्दीप्त और आकर्षित नहीं कर सकती। कामुकता दिन-प्रति-दिन बढ़ती जा रही है। उसकी सन्तुष्टिके लिये नयी-नयी पैशाचिक क्रीड़ाएँ भी आविष्कृत होती जा रही हैं। साथ ही नाना प्रकारकी संक्रामक व्याधियाँ उत्पन्न होकर हमारे जीवनको खोखला बना रही हैं; किन्तु

नयी पीढ़ीकी इस भ्रष्टताकी ओर न तो हमारी विदेशी सरकारका ध्यान कभी जाता है, न माता-पिता और गुरु-शिक्षकका जाता है। विद्यालयोंमें कामशास्त्रकी चर्चा ही पाप है। जिस प्रकार अस्पृश्य जातिको नीच बना कर उन्हें चिरकाल से हम दूर रख रहे हैं और उन्हें बाध्यतः अपवित्र और अस्वास्थ्यकर स्थानोंमें रहना पड़ रहा है, उसी प्रकार बचपन से ही जननेन्द्रियको गोप्य और अपवित्र स्थान कह कर स्पर्श तक नहीं किया जाता। सारे शरीरको हम धोते स्वच्छ रखते हैं; पर उस अङ्गकी उपेक्षा कर उसे गन्दी अवस्थामें ही छोड़ देते हैं। परिणाम यह होता है कि प्रायः अधिकांश व्यक्तियोंके गुप्तांगोंमें और कोई पीड़ा न भी हो तो दाद, एक्ज़िमा तथा अन्य ऐसे चर्मरोग उत्पन्न हो जाते हैं जो अस्वच्छताके कारण हुआ करते हैं।

गुप्तांगोंकी तो यह अवहेलना हो ही रही है और विषयेच्छाका यह हाल है कि जहाँ कहीं दो-चार युवक इकट्ठे हो जाते हैं, इन्द्रिय-परायणताकी चर्चा होती ही है। इसका मुख्य कारण यह है कि इस विषयकी अनुसन्धानेच्छा, इसकी गोपनीयताके कारण और होती है क्योंकि यह प्रकृतिका स्वाभाविक नियम है कि जिस विषयको जितना ही छिपाया जाता है उसे जाननेके लिये मानव स्वभाव उतना ही अधिक उत्सुक रहता है।

ऐन्द्रिक विषयको गुह्य कह कर उसके बारेमें कुछ कहने-सुनने, शिक्षा देनेकी सख्त मनाही होते हुए भी आज हम देख रहे हैं कि प्रकृति अपना काम कर ही रही है। स्कूलों, कालेजों, बोर्डिंग हाउसों,

होस्टलों, नाटक-घरों, होटलों, रेस्टोरेण्टोंमें लड़के इस विषयका समुचित ज्ञान न प्राप्त कर सकनेके कारण अवाञ्छनीय जानकारी प्राप्त कर लेते हैं। यह गुपचुपकी जानकारी उनके शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्यके लिये इतनी हानिकर होती है कि इससे तो इस विषयकी प्रकट और समुचित शिक्षा देना कहीं अधिक श्रेयस्कर होगा। माता-पिता और बड़े-बूढ़े आज कल कानोंमें तेल डाल लेते और यह सोचते हैं कि उनका बच्चा इन्द्रिय-परायणताकी प्रकट चर्चा से वंचित होनेके कारण सीधा और भोला भाला है, किन्तु यदि उन्हें इसके वास्तविक रहस्यका पता लगे तो उनकी आंखें खुल जायँ। यदि काम शास्त्रकी बातें लड़कोंसे छिपाई न जाकर एक निश्चित अवस्था पर पहुंच जाने पर उन्हें शरीर-रचना और प्रजनन क्रिया आदिका ज्ञान करा दिया जाय तो उनकी इस दिशामें स्वाभाविक जिज्ञासा कम हो जायगी। जो लोग यह समझते हैं कि काफी अवस्था तक लड़के इन्द्रिय और प्रजननके विषयोंका ज्ञान नहीं रखते वे भूलते हैं। क्या हम यह आशा करते हैं कि बच्चा जब अपनी माँ को और गर्भ धारण करते और सन्तान पैदा करते देखता है और बाप को 'पिता' कहनेके लिये बाध्य किया जाता है तो वह यह नहीं सोचता होगा कि बच्चे कैसे पैदा होते हैं? आज कल तो चार-पाँच वर्षके बच्चे ही प्रजनन क्रिया सम्बन्धी थोड़ी-बहुत जानकारी रखते हैं। अमेरिकाके जज लिण्डसे साहबने इस विषयकी बहुत खोज-बीन की है, और वे बाल-मनोविज्ञानके विशेषज्ञ हैं। उन्होंने कहा है कि अधिकांश बच्चोंकी इन्द्रिय-परायणताका कारण यही है कि उन्हें इस

विषयकी जानकारीसे दूर रक्खा जाता है और जिज्ञासा होने पर उन्हें उनका उत्तर बाह्य जगत् से नहीं मिलता। फलतः वे अपने ही शरीर पर उस जिज्ञासाका क्रियात्मक अनुसन्धान शुरू कर देते हैं। हस्त क्रिया आदिके कारणोंका यह भी एक मुख्य अङ्ग है। कहनेका मतलब यह है कि आप कितना ही छिपावें किन्तु लड़के तो इस विषयकी ओर स्वाभाविक रूपसे आकर्षित होकर कुछ जानकारी प्राप्त कर ही लेते हैं—ऐसी अवस्थामें यदि सुव्यवस्थित रूपसे शरीर शास्त्रके अन्तर्गत बालकोंको इस विषयकी मोटे रूपमें शिक्षा दे दी जाय और उन्हें उनके गुप्तांगोंकी स्वच्छता आदिका महत्त्व बतला दिया जाय तो इसमें उपर्युक्त गुप्त रूपमें या चोरीसे जानकारी प्राप्त करनेकी अपेक्षा कम खतरा है।

यह तो हुआ आदि रस शास्त्रका महत्त्व और परिचय, अब हमें उसके क्रियात्मक पहलू पर विचार करना चाहिए।

रसोदय

यद्यपि युवावस्था और काम-चेतनाके प्रारम्भके अनेक लक्षण स्त्री-पुरुषोंमें प्रकट होते हैं; परन्तु साधारणतः स्त्रियोंकी अवस्था का प्रारम्भ उनके मासिक स्रावसे और पुरुषोंका पेडू पर बाल उगने से समझा जाता है। इस समय स्त्रियाँ प्रायः अपनी शारीरिक वृद्धि की सीमा पर पहुँच जाती हैं; किन्तु पुरुषकी वृद्धि इसके पश्चात् भी पर्याप्त रूपसे होती है। इस समय स्त्रीके शरीरकी चर्बी विशेष रूपसे बढ़ जाती है और उनके नितम्बके बढ़ जानेसे उनका शारीरिक संगठन और सौष्ठव पुरुष से नितान्त भिन्न हो जाता

है। मुंह पर मुंहासे निकलने और पसीनेसे उग्र गन्ध निकलनेका समय भी यही है। ये सब चिह्न स्त्रियोंमें प्रायः १३-१४ वर्षकी अवस्थामें तथा पुरुषोंमें १६-१७ वर्षकी अवस्थामें प्रकट होते हैं। इसमें व्यक्तिगत, कौटुम्बिक तथा जलवायु आदिके कारण अन्तर भी पड़ सकता है। बहुत-सी लड़कियाँ इससे पूर्व भी यौवनके उपर्युक्त लक्षण प्राप्त कर सकती हैं, बहुत-सी बादमें भी। पुरुषोंके लिये भी यही बात कही जा सकती है। इस अवस्थामें युवक युवतियोंकी आवाज़ोंमें भी अन्तर आ जाता है।

ऋतु स्राव

जिस समय स्त्रीको मासिक स्राव या मासिकधर्म होता है उस समय उसके स्तन बढ़ जाते हैं। जननेन्द्रियके निकट बाल प्रचुरतासे निकलने लगते हैं। वृद्धि शीघ्रतापूर्वक होने लगती है और स्त्री अपने मनमें भी इस परिवर्तनका अनुभव करती है। कामेच्छा जाग्रत हो उठती है—नसें अधिक सञ्चालन शील हो उठती हैं। किन्तु ऋतुस्राव होना आरम्भ होते ही यह समझ लेना भूल है कि अब स्त्री सम्भोग करनेके योग्य हो गयी है। गर्म देशोंमें १०-१२ वर्षमें और ठण्डे देशोंमें १५-१६ वर्ष तककी लड़कियोंको यह लक्षण प्रकट होते हैं। समुद्रके निकट रहनेवाली लड़कोंकी अपेक्षा ऊँचे पहाड़ पर निवास करने वालीको ऋतु स्राव देरसे होता है; किन्तु इस नियमका अपवाद भी है। यह स्राव लाल रक्तके रङ्गका न होकर कुछ काला लिये हुए होता है। यह स्राव मासमें तीन या चार दिन तक होता है—इससे अधिक होना रोग माना जाता है और कम होना भी स्वास्थ्य-विरुद्ध

समझा जाता है। इस स्रावके समय स्त्रीसे संयोग करनेकी मनाही पुराने वैद्यों तथा नये डाक्टरों—सभीने की है। मासिक स्रावके पश्चात् १० से १५ दिन तक स्त्रियोंको काम-वासना अधिक रहती है और प्रायः इन्हीं दिनोंके सम्भोगसे वे गर्भ भी धारण करती हैं।

काम-वासना और उसका उद्दीपन

काम-वासनाका उद्दीपन यद्यपि स्वस्थ स्त्री-पुरुषोंमें स्वाभाविक होता है; किन्तु कृत्रिम रूपसे उसका उद्दीपन करना भी काम-कलाके अन्तर्गत माना गया है। यद्यपि इस विषयके प्राचीन पण्डित यही कहते हैं कि पुरुषकी अपेक्षा स्त्रीमें आठगुनी काम-वासना होती है, किन्तु आधुनिक काम विज्ञानके विशेषज्ञ—जिन्हें शरीर शास्त्रका ज्ञान प्राचीन कालके तद्विषयक आचार्योंसे अधिक है—इससे सहमत नहीं हैं। फिर भी इस बात पर प्राचीन और नवीन सभी काम-कलाविद् एकमत हैं कि स्त्रियोंमें पुरुषोंकी अपेक्षा मन्दकामता विशेष होती है और उन्हें सम्भोगके लिये पहले कृत्रिम उपायोंसे उद्दीप्त करके तैयार करना पड़ता है।

काम-वासनाके उद्दीप्त होनेमें शरीरके जिन मुख्य-मुख्य अंगोंका साहाय्य लिया जाता है वे ये हैं—जिह्वा, नासिका, स्तन-विशेषतः उनका अग्र भाग, उँगलियां, जंघा, गर्दन, नाभि, आंखें, ओष्ठ और त्वचा आदि। इनके अतिरिक्त स्त्री और पुरुष दोनों ही में एक विशेष प्रकारकी गन्ध भी होती है जिसके द्वारा एकके प्रति दूसरेका आकर्षण हो जाता है—किन्तु कभी-कभी ऐसा भी होता है कि इस गन्धके कारण स्त्रीको पुरुषसे या पुरुषको स्त्रीसे घृणा हो जाती है।

यह गन्ध पसीने, श्वासोच्छ्वास, बगल और योनिसे निकलती है। इसीलिये प्राचीनकालसे ही इत्र आदि लगाकर तथा पूर्ण स्वच्छता रखकर चतुर स्त्रियाँ इसे छिपानेका प्रयत्न करती आयी हैं, किन्तु इनमेंसे जननेन्द्रियोंसे निकलती हुई गन्ध पहले घृणाजनक होते हुए भी शनैः शनैः आकर्षक और उद्दीपनका कारण बन जाती है। पुरुष के वीर्यमें भी इसी प्रकारकी आकर्षण युक्त गन्ध होती है जिससे स्त्रियाँ आकर्षित होती हैं; किन्तु किसी-किसी पुरुषके शुक्र-गन्धसे स्त्रियाँ घृणा भी करने लगती हैं। स्वच्छताकी अवस्थामें जहाँ यह गन्ध स्त्री-पुरुषके लिये आकर्षण और उद्दीपनका कारण होती है, वहाँ गन्दे रहने पर या स्त्री या पुरुषके रोगी होनेके सन्देहमें यह गन्ध घृणाका कारण विशेष रूपमें बनती है। इसीलिये सम्भोगके समय सुगन्धि तथा पान और गुलाबजल आदिका सेवन वाञ्छनीय बतलाया गया है। कस्तूरी और उसकी गन्ध युक्त साबुन, पाउडर, सेण्ट, इत्र आदिसे स्त्रियाँ अधिक शीघ्रतापूर्वक आकर्षित और उद्दीप्त होती हैं। किन्तु कस्तूरीसे शारीरिक गन्ध नहीं घटती, उल्टे बढ़ जरूर जाती है—हाँ, यदि शरीरकी गन्ध मारती ही हो तो तीव्र गन्धवाले सेण्ट या इत्रका व्यवहार करना चाहिये। इस सिलसिलेमें यह विचार कर लेना भी अप्रासंगिक नहीं होगा कि स्त्री-पुरुषका प्रेमालाप भी उद्दीपनमें शीघ्रता और उग्रता उत्पन्न करनेमें सहायक होता है। अलंकार युक्त सस्वर संगीत भी इसमें वृद्धिका कारण बनता है। किन्तु उपर्युक्त सभी ज्ञानेन्द्रियोंकी अपेक्षा दृष्टिका महत्त्व आधुनिक काम-विज्ञानके विशेषज्ञोंने विशेषरूपसे बतलाया है। पहले दर्शन भी

आकर्षण और उद्दीपनका मुख्य कारण बनता है। इस दृष्टिगत उद्दीपनका मुख्य रहस्य यह है कि स्त्रीके मुखकी शोभा और स्तनोंका आकार तथा बनावट पुरुषको शीघ्र आकर्षित और उद्दीप्त कर देती है। स्त्रियोंका दृष्टिकोण इस दिशामें भिन्न है—स्त्रियाँ विशेषतः हृष्ट-पुष्ट और सुडौल पुरुष पर ही मुग्ध होकर शीघ्र उद्दीप्त होती हैं।

दृष्टिके बाद उद्दीपनका सबसे महत्त्वपूर्ण अङ्ग स्पर्श है। ऊपर कहा जा चुका है कि उँगलियों, ओठ, जीभ और जननेन्द्रियके ऊर्ध्व भागमें उभड़े हुए नाक-जैसी आकृति वाले अङ्गमें काम-चेतना अधिक होती है। यद्यपि स्पर्श द्वारा उद्दीपनका होना न होना स्त्री की तत्कालीन मन-स्थिति पर निर्भर है किन्तु विद्वानोंका मत है कि उँगलियोंसे स्तनकी फुण्डियों, ओठोंसे ओठों और लिंगेन्द्रियके अग्र भागसे स्त्रीकी योनिके उपर्युक्त ऊर्ध्व भागका स्पर्श करनेसे स्त्री उद्दीप्त होकर शीघ्र सम्भोगके लिए तैयार हो जाती है।

यह तो हुआ शरीर और मनका उद्दीपन पर प्रभाव। अब कुछ ऐसे द्रव्योंकी जानकारी प्राप्त कर लेना भी आवश्यक होगा जो वास्तवमें कामोद्दीपनमें सहायक होते हैं। इस प्रसंगमें यहाँ यह बतला देना अनावश्यक नहीं होगा कि नवविवाहित युवकोंको अखबारोंमें विज्ञापित दवाइयोंके फेरमें पड़कर पैसे और शरीरको व्यर्थ नष्ट नहीं करना चाहिए। क्योंकि तीव्र और उत्तेजक औषधियोंके व्यवहारसे यद्यपि क्षणिक उत्तेजना हो जाती है; पर कुछ समय बाद स्वाभाविक उद्दीपन-शक्तिका ह्रास हो जाता है। उद्दीपनमें साधारणतः जिन वस्तुओंसे थोड़ी बहुत सहायता मिलती है वे हैं—केशर,

जायफल, दालचीनी, अदरक, मिर्च, कंकोल, प्याज, लहसुन, जुंदील, अनन्नास, पिपरमेन्ट, अंडे और मांस। इनके अतिरिक्त चाय, काफी आदि भी उत्तेजक मानी जाती हैं; किन्तु ये वस्तुएँ दवाके रूपमें बराबर न ली जाकर कभी कभी लेने पर भी उद्दीपनमें स्वल्प सहायक होती हैं। अनाहार तथा खट्टे पदार्थोंके सेवनसे कामवेग और भी मन्द पड़ जाता है। कभी एकाध बार थोड़ी मात्रामें अफीम के सेवनसे भी काम वासना बढ़ती है; परन्तु बराबर लेने वाले मन्द कामी हो जाते हैं। इस सम्बन्धमें 'फ़ास फरस' नामक अंग्रेजी दवा का नाम लिये बिना नहीं रहा जा सकता। यह शरीर और मस्तिष्क के पोषणके साथ ही कामोद्दीपनमें सहायक होता है। इसमें क्षुधा बढ़ानेका भी गुण है, किन्तु अधिक मात्रामें हानिकारक भी सिद्ध हो चुका है। इसके सेवनके पूर्व योग्य डाक्टरसे परामर्श अवश्य ले लेना चाहिए। इसके अतिरिक्त आजकल डाक्टरोंने कुछ जीवोंके बीज-कोषका चूर्ण और अर्क देना भी शुरू किया है। इसका इंजेक्शन देना भी शुरू हो गया है और उससे आशातीत लाभ होता देखा गया है; किन्तु यह सब खूराक न होकर औषधियाँ हैं अतः इनका सेवन बिना सुचिकित्सककी सलाह लिये, नहीं करना चाहिए।

चिकित्साके सम्बन्धमें कुछ लिख देने पर भी हम युवकोंको यही राय देंगे कि वे दवाके फेरमें न पड़ कर यदि वैसे ही समुचित आहार विहारके द्वारा शरीर नीरोग रक्खेंगे तो उन्हें अधिक और स्वाभाविक सुख मिलेगा। स्वास्थ्यके सामान्य नियमों पर चलना स्वच्छ वायु और समुचित आहार सेवनके साथ-साथ कुछ व्यायाम

और शारीरिक परिश्रमकी आदत डाल लेने पर प्रकृति स्वयं उनकी मदद करेगी।

सम्भोग

स्त्री-पुरुष संभोगमें जो सर्व-प्रथम विचारणीय बात है वह है उनकी आयुका अनुपात। पुरुषकी अवस्था स्त्रीकी उम्रकी अपेक्षा हर हालतमें अधिक होनी चाहिये और दोनोंकी शारीरिक दशा ठीक होनी चाहिये। दोनोंमें से किसीको भी कोई रोग हुआ तो सम्भोग और दुखद सिद्ध होता है। केवल अवस्था और रोग ही विचारणीय विषय नहीं है। काम-सुखका ध्येय यह है कि स्त्री-पुरुष दोनों में काम-चेतनाकी क्रमिक वृद्धि हो और अन्तमें भोगका चरम-सुख भी एक साथ प्राप्त हो। मतलब यह कि स्त्री-पुरुष दोनोंका रज-वीर्य स्खलन साथ-ही-साथ हो।

केवल गर्भ-धारण करनेके लिये स्त्री-संभोग करे, यह आदर्श तो न पूर्व कालमें ही था और न अब है। किन्तु इतना तो मानना ही पड़ेगा कि वर्तमान पीढ़ीमें पहले की अपेक्षा काम-वृत्ति अधिक बढ़ गयी है और धार्मिक मर्यादा और लोक-भयका भी पहले जैसा प्रभाव अब समाज पर नहीं रहा है। ऐसी अवस्थामें यह आवश्यक हो गया है कि स्त्री-पुरुष कामकलाका इतना ज्ञान तो अवश्य रक्खें कि वे पारस्परिक परितुष्टि प्राप्त कर सकें। साधारणतः सम्भोगके तीन विभाग किये जा सकते हैं, जिनको सम्यक् रूपेण न करने पर परितुष्टि नहीं प्राप्त हो सकती। सम्भोगके ये तीनों अङ्ग हैं—भूमिका, इन्द्रिय सम्भोग और परिशिष्ट जिन पर यहाँ क्रमशः विचार किया जायगा।

सम्भोगकी भूमिका काम-जाग्रतिके बाद आरम्भ होती है और उसका श्रीगणेश चुम्बनसे होता है। चुम्बनका उद्दीपनात्मक असर पुरुष की अपेक्षा स्त्री पर विशेष रूपसे पड़ता है। यहाँ चुम्बनोंका विवरण शरीरके किस भागके चुम्बनसे कैसा सुख है आदि—न देकर केवल स्त्रीके मुख-चुम्बनका ही जिक्र है। जिह्वाको स्त्रीके मुखमें प्रविष्ट कर उसकी जिह्वासे संघर्षित करना भी चुम्बन का ही एक अंग माना गया है। प्रायः कामकला शून्य देहाती पुरुष और कुछ न कर केवल इन्द्रिय-सम्भोग ही करनेमें प्रवृत्त हो जाते हैं तथा ज्यों-त्यों उसकी पूर्ति कर पशुओंकी भाँति अलग हो जाते हैं। इससे स्त्रीको शारीरिक और मानसिक कष्ट होता है। इसी प्रकार यदि स्त्री-सम्भोग की भूमिकाके समय कुछ बनावटी मान या अनिच्छा न प्रकट कर तत्काल सम्भोगार्थ तैयार हो जाती है तो पुरुषको भी आनन्द नहीं आता, किन्तु इस बनावटी अनिच्छा या नखरे के लिये बहुत थोड़ा समय सापेक्ष है, अधिक विलम्ब तक ऐसा करना हानि कर सिद्ध हो सकता है। चुम्बनकी ही भाँति कामुकतापूर्ण सम्भाषण भी सम्भोगकी भूमिका है। इससे भी उद्दीपनकी पूर्ति होती। भूमिका के समय स्त्रीकी भौं, आँख, कपोल, ओष्ठ और स्तन का दर्शन भी आवश्यक है। हम यह पहले ही बतला आये हैं कि स्त्रीका स्तनाग्रभाग (घुण्डी) और योनि-नासिकाका स्पर्श उद्दीपनके प्रधान साधन हैं। कुछ युवक लज्जावश अँधेरेमें ही ज्यों त्यों स्त्री-सम्भोग करके अलग हो जाते हैं। ऐसी अवस्थामें भूमिका और परिशिष्टके अभावमें सम्मिलन सुख की पूर्ति नहीं हो पाती।

भूमिकाके पश्चात् जब स्त्रीकी चेष्टासे मालूम हो कि वह तैयार है—अर्थात् उसकी जननेन्द्रियकी पेशियोंमें रस-स्राव होनेके कारण वह हुमस कर स्वयं सम्भोगेच्छा के लिये व्याकुल है, तब पुरुष लिंग प्रवेश करे।

यहाँ हम कामासनोंकी सूची और विधि देकर व्यर्थ पुस्तकका विस्तार करना आवश्यक नहीं समझते। इसका कारण एक तो यह है कि कामासन ऐसे हैं कि उनके सम्बन्धमें पढ़ कर कुछ क्रियात्मक रूपमें किया नहीं जा सकता, और सब आसन सब प्रकारके स्त्री-पुरुषोंके लिये सम्भव भी नहीं हैं। दूसरे आजकलके युवक इतने अल्पवीर्य और दुर्बलेन्द्रिय हैं कि विविधि आसनोंकी विधि लगाने तक तो वे अनेक बार स्खलित हो जा सकते हैं। इसलिये इस विषयमें विशेष कुछ न लिखकर केवल इतना बतला देना ही हम अलम् समझते हैं कि सहज आसन ही सबसे सरल और सुखद है। स्त्री अपनी जाँघें सीधी फैलाकर लेटे और घुटने समेट ले। पुरुष उसके ऊपर इस प्रकार रहे कि उसका भार स्त्रीपर न रहे और वह अपनी दोनों कुहनियों और घुटनोंपर शरीरका बोझ रखे। वह अपने पैर और जँघे स्त्रीके दोनों जंघोंके बीचमें रख घुटनों और कुहनियोंको विस्तरपर टेक सम्भोग करें यद्यपि उपर्युक्त उद्दीपनात्मक उपायोंसे स्त्रीकी योनिमें रस संचार हो उठता है, परन्तु बाज़ स्त्रियोंसे अभीष्ट सुख नहीं मिलता अतः इन्द्रियमें थूक या वैसलिन लगानेका विधान कामकलाके पुराने और नये जानकारोंने लिखा है।

जिस समय सम्भोगकी पूर्ति होती है और पुरुषका वीर्य स्खलित होने लगता है तो फिर वह रोकने पर नहीं रुक सकता। वीर्यके पूर्णतः स्खलित होते ही पुरुषकी उद्दीप्त अवस्था शीघ्र शान्त हो जाती है किन्तु स्त्रीकी शीघ्र नहीं शान्त होती। प्रायः स्त्रियां पुरुषके पूर्व स्खलित हो चुकनेपर भी सम्भोगके अन्तमें फिर धीरे-धीरे स्खलित होती हैं—अतः यह आवश्यक है कि स्खलित हो चुकनेके बाद भी एकाध मिनट पुरुष स्त्रीसे पृथक् न हो—यही सम्भोगका परिशिष्ट या उपसंहार है।

कई काम-विशेषज्ञोंका कथन है कि शीघ्र-स्खलनका समय बढ़ानेके लिये कई-कृत्रिम उपाय भी हैं, किन्तु इससे कोई भी लाभ नहीं होता। इससे उत्तम तो यही है कि स्त्रीके उद्दीपनमें—स्पर्श चुम्बन आदि द्वारा—अधिक समय लगा दिया जाय।



सन्तति-नियमन

विज्ञानके नये-नये आविष्कार और समयकी माँगने जहाँ मनुष्यके सुखके सभी बाह्य साधन उपस्थित कर दिये हैं, वहां अब उसने वह अवस्था भी ला उपस्थित की है जब स्त्री-पुरुष अपनी जननेन्द्रियोंमें कृत्रिम आवरण लगाकर और इस प्रकार रज-वीर्यके समुचित सम्भोगको रोक कर सन्तानोत्पत्तिको रोक सकते हैं। इस प्रकारकी क्रियामें यद्यपि दुरुपयोगका भय ऐसा है जिसके कारण बहुत-से लोग इसे अवाञ्छनीय बतलाते हैं और कहते हैं कि इससे कुमारियों और विधवाओंमें भी व्यभिचार फैल जायगा, किन्तु संसारकी सभी वस्तुओंका सदुपयोग और दुरुपयोग होता है—यह उपयोग करनेवालेकी बुद्धि और इच्छापर निर्भर है। जो लोग

दुश्चरित्र हैं और केवल अपनी ही स्त्री से सन्तुष्ट न होकर इधर-उधर शिकारकी तलाशमें रहते हैं, वे वैसे भी व्यभिचार करेंगे ही—सन्तति-निरोधकी विधि उन्हें मालूम हो या नहीं, वे अपनी ओरसे बाज नहीं आयेंगे। ऐसी अवस्थामें ऐसे लोगोंके लिये जो अपनी स्त्री पर प्रयोग करके आर्थिक सङ्कटके कारण अधिक बच्चे पैदा करनेसे बचना चाहते हैं, यह विधि अवाञ्छनीय नहीं कही जा सकती।

सन्तति-नियमनके प्रश्नको लेकर इस देशमें बहुत-कुछ लिखा जा चुका है। महात्मा गाँधी तकने इसके सम्बन्धमें चर्चा की है। यद्यपि महात्माजीने सन्तति-नियमन (Birth control) की जगह लोगोंको आत्म-नियमन (Self-control) का अभ्यास करनेका उपदेश दिया है; किन्तु यह उपदेश आदर्श होते हुए भी वर्तमान युगमें अक्रियात्मक हो चला है। आत्म-नियमनमें जो कठिनाइयाँ हैं, उन्हें दूर करना साधारण व्यक्तियोंका काम नहीं है। बड़े-बड़े योगी यति तक इसका पालन करनेमें असमर्थ सिद्ध हुए हैं। ऐसी अवस्थामें महात्माजीका यह उपदेश सर्वसाधारणके लिये लागू न होकर केवल विशेष व्यक्तियोंके लिये ही कुछ लाभदायक सिद्ध हो सकता है।

सन्तति-नियमनका प्रचार फ्रांस, अमेरिका, जर्मनी, इङ्गलैण्ड और जापानमें विशेष है। इसकी वैसे तो अनेक विधियाँ और औषधियाँ बहुत कालसे प्रचलित हैं; किन्तु हालमें विज्ञानने इस सम्बन्धमें जो आविष्कार किया है, वह अधिक सफल सिद्ध हुआ।

यह विधि दो प्रकारकी है जिसमेंसे एक तो स्त्री काममें लाती है और दूसरी पुरुष। दोनोंमेंसे एक भी इसका प्रयोग करें तो गर्भ रहनेका भय नहीं रहता।

स्त्रीके लिये जो विधान है, उसमें एक मुलायम रबड़की बारीक झिल्लीकी टोपी, जिसे पेसरी कहते हैं और जिसमें रेशमका बारीक मुलायम धागा लगा रहता है, योनिके अन्दर गर्भाशयके मुखपर फिट करके लगानी पड़ती है। इससे स्त्री-पुरुष सम्भोगके बाद जो वीर्य गर्भाशयमें जानेवाला होता है वह इस प्रतिबन्धके कारण अन्दर नहीं जाता, इससे गर्भ—धारणका भय नहीं रहता। सम्भोगके पश्चात् यह टोपी निकाल कर पोटाशियम पर्मगनेट युक्त गर्म पानीमें धो ली जाती है। इस विधिसे सम्भोग-सुखमें भी बाधा नहीं पहुँचती और पुरुषको और कोई उपाय नहीं करना पड़ता।

पुरुषके लिये वैज्ञानिकोंने जो झिल्लीकी टोपी लिंगपर पहनानेके लिये बनायी है, उसे फेंच लेदर या शीथ कहते हैं। यह दो प्रकारकी होती है—एक वह जो सिर्फ लिंगेन्द्रियके ऊपरी भागपर अर्थात् जहाँसे ऊपरी सुपारी शुरू होती है, फिट किया जाता है—दूसरा समूचे लिंगपर। पहला केवल ऐसी स्त्रीसे सम्भोग करते समय लगाया जाता है जिससे मैथुन करके छूतकी बीमारीका डर नहीं रहता। दूसरीसे छूतकी बीमारी—गर्मी सूज़ाकका भय नहीं रहता। इसे लिंगेन्द्रिय पर चढ़ाकर सम्भोगके पश्चात् जो वीर्यपात होता है, वह इसके नुकीले भागमें जमा होकर रह जाता है और इस प्रकार स्त्रीके गर्भाशयमें नहीं जाने पाता। सम्भोगके बाद इसे भी उतार

कर पूर्ववत् गर्म पानीमें धो लेते हैं और इस प्रकार एक ही टोपीको अनेक बार काममें लाते हैं। इसके लगानेसे जननेन्द्रिय सम्बन्धी छूतके रोगों—गर्मी सुज़ाकसे भी बचाव रहता है; किन्तु यद्यपि वैज्ञानिकोंने इस झिल्लीको इतना बारीक और मुलायम बनाया है कि इसे लिंगमें पहन कर सम्भोगके समय योनिके अन्दरकी गर्मी और आर्द्रताका आँशिक अनुभव करके सम्भोगका कुछ आनन्द प्राप्त हो सकता है किन्तु फिर भी कृत्रिम विधि कृत्रिम ही है और इससे सम्भोगका पूरा आनन्द कदापि नहीं मिल सकता। दूसरे इसका पश्चात् परिणाम भी अच्छा नहीं होता, क्योंकि इससे स्त्री-पुरुषोंके स्नायुविक संघर्षमें बाधा पड़नेके कारण उन्हें मानसिक तुष्टि नहीं मिल सकती। सच पूछा जाय तो इस विधिसे करीब-करीब स्नायु-तन्तुओं को उतनी ही हानि पहुँच जाती है, जितनी हस्त-मैथुनसे, किन्तु चूंकि इससे गर्भ रहनेका भय नहीं रहता और पुरुषको स्त्रीके अन्य अङ्गोंके स्पर्शका सुख मिल ही जाता है, इसलिये यह उतनी मात्रामें अवाञ्छनीय नहीं है, जितने परिमाणमें हस्तमैथुन।

दोनों विधियोंका अनुभव रखनेवालोंका मत है कि स्त्रियों द्वारा इस्तेमाल की जानेवाली विधि ही दम्पतिके लिये अधिक सुखकर और उपयोगी है। किन्तु यह याद रखना चाहिए कि कित्रिम उपायोंको भी अधिक काममें नहीं लाना चाहिए, क्योंकि अधिक उपयोगसे स्त्री पुरुष दोनों ही की जननेन्द्रियोंमें स्वाभाविक सम्भोग सुख अनुभव करनेकी शक्तिका ह्रास होने लगता है। इन कृत्रिम उपायोंका अवलम्बन भी अधिकसे अधिक सप्ताहमें एक बार किया

जा सकता है। जो लोग इसे गर्भ-निरोधके भयसे बचे रहनेका साधन समझ इसे अधिक उपयोग करेंगे, वे स्वयं देखेंगे कि कुछ काल वाद उनका स्वाभाविक सम्भोगका आनन्द लुप्त हो गया है।

जो नवदम्पति सम्भोगमें अधिक लिप्त होकर वीर्यका व्यर्थ क्षय करते हैं, उन्हें यह जान रखना चाहिए कि जिस एकबारके वीर्य-स्खलनसे उनके शरीरसे लाखों स्वास्थ्यवर्द्धक कीटाणुओंका क्षय होता है, उन्हें बार-बार स्खलित करके वे बल-पराक्रम, शौर्य, बुद्धि और स्मरण शक्ति कैसे क़ायम रख सकते हैं। अधिक सम्भोग-रत रहनेवाले स्त्री-पुरुषोंके दाँत और आखें समयसे पहले ही जवाब दे जाती हैं। उनके शरीरमें जवानीमें ही बुढ़ापेके सभी लक्षण प्रकट होने लगते हैं और फिर ऐसी अवस्था आ जाती है कि वे इस आदतसे अपना नाश कर लेते हैं। इसका भी एक ऐसा नशा हो जाता है जिसे छोड़ना कठिन हो जाता है। जिस प्रकार नशाकी मात्रा बढ़ाकर उसे घटानेसे तकलीफ होती है, उसी तरह सम्भोगकी मात्रा अधिक बढ़ाकर उसे घटानेमें बहुत कष्टका अनुभव करना पड़ता है—इसलिये बहुत सोच-समझकर अत्यन्त सावधानीके साथ यथासम्भव बहुत ही कम मात्रामें इस कृत्रिम उपायका अवलम्बन करना चाहिए।

सन्तानके प्रति कर्त्तव्य

प्रत्येक पिताका कर्त्तव्य है कि वह अपनी सन्तानको सुयोग्य बनानेके लिये जो कुछ भी कर सके, करे। सर्वप्रथम पिताका कर्त्तव्य है कि वह अपने बच्चोंके पालन-पोषणका जहाँ तक हो सके समुचित प्रबन्ध करे, क्योंकि शैशवावस्थाका पालन-पोषण बच्चोंके शारीरिक और मानसिक विकासकी प्रथम सीढ़ी है। जिस जाति या जिस राष्ट्र अथवा जिस व्यक्तिके बच्चोंका पालन-पोषण यथेष्ट रूपमें नहीं होता वह कभी उन्नति कर ही नहीं सकती। जिस प्रकार छोटे पौदों को सींचनेकी अधिक आवश्यकता होती है, उसी प्रकार छोटे बच्चोंके पोषण की भी अत्यधिक आवश्यकता होती है। बचपनमें पर्याप्त दूध और अन्य खाद्य पदार्थ न पाने पर बच्चोंका शरीर टूट-सा जाता है

और फिर युवावस्थामें समुचित आहार मिलने पर भी, उनको पूरा शारीरिक और मानसिक विकास नहीं हो पाता। इसलिये यह आवश्यक है कि छोटे बच्चोंके पालन-पोषणका पूरा ध्यान रखा जाय और इस सम्बन्धमें उन्हें किसी प्रकारका कष्ट न होने पाये।

पालन-पोषणके अतिरिक्त बच्चोंकी मानसिक प्रवृत्तिके अध्ययन करनेकी योग्यता भी पितामें होनी चाहिये। दुर्भाग्यवश अभी हमारे देशमें शिशु सम्बन्धी मनोविज्ञान (child psychology) का पूर्णतः अभाव है। इसलिये पिता अपने बच्चोंकी क्रमशः विकास पाती हुई मनोवृत्तिका पर्यवेक्षण नहीं कर पाता। शैशव कालमें बच्चा किस प्रकारकी वस्तुएँ देख कर प्रसन्न होता है—किससे दुःखी होता है, कैसी चीजें देख कर उनकी ओर हाथ बढ़ाता है और कैसी वस्तुओं से दूर भागता है, आदि बातोंका निरीक्षण और विश्लेषण करके उसे ऐसी ही वस्तुओंके निकट रखना और ऐसे ही वातावरणसे आवृत रखना माता-पिताका कर्त्तव्य है जिससे बच्चे प्रसन्न रहें और उनके स्वास्थ्य पर उसका अच्छा प्रभाव पड़े। जिस प्रकार यह आवश्यक है कि माताके दूधके पश्चात् बच्चोंकी खुराकका पूरा ध्यान रखते हुए उन्हें गो-दुग्धादि पोषक और शीघ्र पचने वाले पदार्थ दिये जायँ, जिससे उन्हें बदहज़मी न हो और उनके विकासमें किसी प्रकारकी बाधा न पड़े—उसी प्रकार उन्हें सुन्दर खिलौने देने और हर तरह उन्हें प्रसन्न रखनेकी व्यवस्था करके भी उनके विकासका मार्ग प्रशस्त किया जा सकता है। जिस प्रकार बच्चोंके कोमल अंगोंको स्वच्छ और स्वस्थ रखनेके लिये उन्हें उबटन लगाया जाता तथा नहला-

धुला कर साफ बारीक और लचीले कपड़े पहनाये जाते एवं आँखों-को रोगमुक्त रखनेके लिये काजल-आँजन लगाया जाता है, उसी तरह उनके विनोदी, प्रसन्न और आह्लादयुक्त बनाये रखनेके लिये रंग-बिरंगे खिलौने, तसवीरें और नयनाभिराम वस्तुएँ दिखाते रहना चाहिये। इस बातका उद्योग करना चाहिये कि बच्चा खिलखिला कर हँसे। खुल कर और उच्च स्वरसे हँसने वाले बच्चोंको उदर रोग नहीं हुआ करता। एक अमेरिकन लेखकका कथन है कि अट्टहास करके जो अपने हृदयकी प्रसन्नता प्रकट करते हैं, वे मानो प्रत्येक खिल-खिलाहटके साथ पौष्टिक पदार्थकी एक खूराक लेते हैं। सारांश यह है कि स्वास्थ्यका प्रसन्नतासे घनिष्ट सम्बन्ध है और बच्चोंको प्रसन्न रखनेका प्रयत्न उनको पौष्टिक खुराक पहुँचानेके सदृश है। इसके अतिरिक्त बच्चोंको प्रसन्न रखनेका प्रयत्न इसलिये भी आवश्यक है कि वे अत्यन्त सरल और कोमल होनेके कारण अनुकूल या प्रतिकूल बात आने पर प्रसन्न या दुःखी हो उठते हैं, ऐसी अवस्थामें यह आवश्यक है कि उन्हें सदा अनुकूल वातावरणमें रक्खा जाय, जहाँ उनको प्रस-न्नताकी सामग्री प्रस्तुत रहे। किसी तरह भी बच्चोंको डाँटना-फट-कारना या उनके सामने भयानक मुद्रा बनाना, उनके कानमें जोरकी 'कू कू' आदिकी आवाज़ करना मानसिक और शारीरिक दोनों ही दृष्टिसे उनके लिये हानिकारक है। पिताको चाहिये कि इन सभी बातोंसे बच्चोंकी रक्षा करे। प्रत्येक व्यक्तिके द्वारा बच्चोंका प्यार किया जाना, उनका चुम्बन, आलिंगन आदि भी हानिकारक क्रियायें हैं। इसी प्रकार बच्चोंको बहुत अधिक गोदका आभ्यस्त भी नहीं बनाना चाहिये।

दूसरी आवश्यक बात है बच्चोंकी शिक्षा। यह समस्या धीरे-धीरे इतनी जटिल होती जा रही है कि भारतमें अपनी अनेक त्रुटियोंके कारण शिक्षा एक अवाञ्छनीय वस्तु बनती जा रही है। इसका प्रधान कारण यह है कि उच्च शिक्षा इतनी व्यर्थ-सी हो गई है कि जिससे न जीवन-यापनमें कुछ मदद मिलती है, न ज्ञानवर्द्धन में। प्रारम्भिक शिक्षा भी इतनी त्रुटिपूर्ण हो गई है कि उसकी उपयोगिता के सम्बन्धमें समाज शास्त्रवेत्ता गम्भीर प्रश्न करने लगे हैं। आरम्भिक शिक्षाके इस निकम्मेपनका कारण यह है कि इस देशकी सरकार शिक्षाको अधिक वैज्ञानिक और त्रुटिहीन बनानेके लिये पर्याप्त धन नहीं व्यय करती। आरम्भिक शिक्षाको बालक-बालिकाओंके मानसिक विकासका साधन न बना उसे एक ऐसी चीज़ बना दी गई है, जिसके सहारे बालक सिवा कुछ बातें ज़बर्दस्ती रट लेनेके, कोई मानसिक विकास नहीं कर पाते। यद्यपि इस देशमें भी नाम लेनेको चार-छः ऐसी संस्थाएँ खुल गई हैं जहाँ रटाईका पूर्ण बहिष्कार करके वैज्ञानिक ढङ्गसे किंडरगार्टन शिक्षा-प्रणालीके द्वारा शिक्षा दी जाने लगी है; किन्तु यह शिक्षा-प्रणाली गैर-सरकारी प्रयत्नोंका फल है और अभी इतनी महँगी है कि निम्न और मध्यम श्रेणीके लोग उससे लाभ नहीं उठा सकते। ऐसी अवस्थामें सुधी लोगोंको केवल शिक्षा-संस्थाओं पर ही न निर्भर करके स्वयं भी अपने बच्चोंकी शिक्षाकी ओर विशेष मनोयोग देकर, कुछ समय इस ओर लगाना चाहिये।

शिक्षाके सम्बन्धमें कुछ कहते समय हम अपने वर्तमान गुरुकुलों

की शिक्षा-प्रणालीका ज़िक्र किये बिना नहीं रह सकते। शिक्षाके साथ सच्चरित्रताका प्राचीन आदर्श स्थापित करनेकी दृष्टिसे गुरुकुलोंकी स्थापना हुई है; किन्तु इस शिक्षा-प्रणालीमें एक बड़ी त्रुटि यह रह जाती है कि इसके स्नातक सांसारिकता और व्यवहार पटुतामें औसत दर्जेके कालेजके छात्रोंके मुकाबलेमें सच्चरित्रतामें अच्छे होते हुए भी, पीछे रह जाते हैं।

एक बड़ी समस्या आज कल यह भी हो गयी है कि बच्चोंको कुसंगतिसे कैसे बचाया जाय। स्कूल-कालेजोंका वातावरण ऐसा दूषित हो चला है कि अधिकांश बुरे लड़कोंकी संगतिमें पड़ कर सीधे-सादे, भोले-भाले और अच्छे लड़के भी दुष्ट और दुश्चरित्र बन जाते हैं। यद्यपि हमारे स्कूल-कालेज ऐसे खराब हो गये हैं; पर अवस्था ऐसी आ गयी है कि इस पर भी हम उनका बहिष्कार नहीं कर सकते और बाध्यतः हमें अपने बच्चोंको शिक्षा-प्राप्त करनेके लिये वहीं भेजना पड़ता है, ऐसी अवस्थामें आवश्यकता इस बातकी है कि उनकी देख-रेख रक्खी जाय और उनके रंग-ढङ्ग से निरीक्षण कर लिया जाय कि स्कूलमें वह किस प्रकारकी बातें सीख रहा है। प्रायः घरके नौकर-नौकरानियाँ भी बच्चोंको दुश्चरित्र बनानेकी ओर ले जाते देखी गयी हैं, इसलिये बच्चोंकी ओर से माता-पिताको आँख मूंद कर नहीं रहना चाहिये।

चरित्र-निर्माणके लिये बच्चोंको सफ़ाईका महत्त्व भलीभाँति समझा देना चाहिये। शारीरिक और मानसिक दोनों ही प्रकारकी स्वच्छता सापेक्ष है। बच्चोंको नहाने-धोने और व्यायाम करनेकी शिक्षाके

साथ-साथ उनके मानसिक विकास और सुधारके लिये भी यह आवश्यक है कि उन्हें स्कूलके बाहर भी ऐसी शिक्षा मिले जो उनके चरित्र-निर्माणमें सहायक हो। जिससे आगे चल कर वे देशके समुज्ज्वल रत्न बनें।

बच्चोंकी मनोवृत्तिका अध्ययन उनकी शैशवावस्था से ही किया जाना चाहिए, जिससे यह मालूम हो जाय कि उनकी प्रवृत्ति किस ओर है और आरम्भ से ही उसके अनुकूल वातावरण उत्पन्न करने की चेष्टा की जाय। इससे यह लाभ होगा कि पिताको यह जाननेमें कठिनाई नहीं पड़ेगी कि बच्चेको किस क्षेत्रमें डालने से अधिक सफलताकी आशा हो सकती है। जिस ओर बालकका स्वाभाविक झुकाव होगा, उस क्षेत्रमें जाकर उसकी उन्नति होनी भी निश्चित होगा।



देश और समाज

प्रत्येक व्यक्ति—विशेषतः युवक और विवाहित युवक समाज के प्रति खास उत्तरदायित्व रखता है। युवक ही देश और समाज का प्राण होता है। जिस देशके युवक अपने समाज और देश के प्रति अपने कर्त्तव्योंको समझ कर उसका पालन नहीं करते उसका सर्वनाश निश्चित है। समाज और देशकी समष्टिकी कल्पना करते समय यदि हम उसकी तुलना एक यंत्रसे करें तो बात आसानीसे समझमें आ सकती है। जिस प्रकार सभी यन्त्रोंके सुचारु रूप से कार्य न करने पर उसका कार्य अपूर्ण और त्रुटियुक्त होता है उसी प्रकार किसी समाज और देशके युवक जब अपने कर्त्तव्यका पालन समुचित रूपसे नहीं करते तो वह विशृङ्खलित और त्रुटिपूर्ण हो

जाता है। यही कारण है कि प्रत्येक देशके बुद्धिमानोंने अपने यहाँ सामाजिक और सार्वदेशिक संगठन करके कार्य करनेकी व्यवस्था की है।

समाज और देशके प्रति अपने कर्त्तव्य-पालनके अनेक ढङ्ग है। जब हम समाज या देशकी भलाईके लिये चलते हैं तो हमें अपने क्षुद्र स्वार्थोंका बलिदान करना पड़ता है और सामूहिक लाभोंका सबसे पहले ख़याल रखना पड़ता है। मनुष्यको इस प्रकारके बन्धनमें इस-लिये पड़ना पड़ता है कि सृष्टिमें ऐसी विभिन्नता है कि कोई धनी है तो कोई ग़रीब; कोई बुद्धिमान है तो कोई बुद्धिहीन। ऐसी अवस्था में मनुष्यको एक परिवारकी भाँति समझ कर, जिसके कि सभी प्राणी विभिन्न योग्यताओं और अयोग्यताओंसे युक्त होते हैं, हमें मनुष्य मात्रसे व्यवहार करना पड़ता है। एकके वर्द्धित धन या बुद्धि से दूसरा, जो अपेक्षाकृत धनहीन और अल्पज्ञ है, इस प्रकार लाभा-न्वित होता है।

वास्तवमें मनुष्य जातिने जिस समय सामाजिक और सार्व-देशिक सहयोगकी कल्पना की थी, वह स्वर्णयुग था; किन्तु समयके फेरसे मनुष्य इतना स्वार्थी हो गया कि उसमें अपने स्वार्थोंकी कुछ भी बलि करके दूसरेको लाभ पहुँचानेके भावनाकी कमी आ गयी। आज यद्यपि सहयोग और संगठनकी प्राचीन भावना लुप्त हो चुकी है; किन्तु चूंकि स्वार्थ-साधनके लिये भी सहयोग और संगठनकी आवश्यकता होती है अतः प्रत्येक अवस्थामें संसारमें इसकी आव-श्यकता बनी रहेगी। इस समय संसारके एक राष्ट्र संगठित रूपसे

दूसरे और अपेक्षाकृत निर्बल राष्ट्र पर धावा करके उसे हड़प जाने की जो भावना रखते हैं उसकी सफलताके लिये भी उन्हें अपने देश के व्यक्तियोंमें सहयोग और संगठन करना पड़ता है। कहनेका आशय यह है कि चाहे सत्कर्मके लिये हो या दुष्कर्मके निमित्त, मनुष्यको समष्टिका सहारा लेना ही पड़ता है—वह अकेला प्रत्येक कार्यको सम्पन्न नहीं कर सकता। प्रकृतिका नियम ही ऐसा है। मनुष्य अपूर्ण पैदा हुआ है और इसीलिये पैदा होते ही वह रोकर साथी ढूंढ़ता है उसे माता मिलती है जो उसे दूध पिलाकर सबल-पुष्ट और खेलने योग्य बना देती है। क्रीड़ा क्षेत्रमें भी बालक साथी ढूंढ़ता है जिसके साथ खेलकर वह अपना मनोरञ्जन करता है। फिर शिक्षा-दीक्षामें भी उसे दूसरों पर निर्भर करना पड़ता है और अन्तमें तरुण होकर उसे अपनी जीवन-सहचरीकी खोज होती है—फिर वह बाल-बच्चे पैदा करके अपने दायरेको बढ़ाता है। इस प्रकार क्रमशः मनुष्य सहयोग और संगठनका आधार लेकर अपना क्षेत्र विस्तीर्ण करता है। बिना इसके उसका काम ही नहीं चल सकता। यहाँ तक कि जब मनुष्य बाल-बच्चे और घर-गृहस्थी छोड़कर संन्यासी हो जाता है उस समय भी उसे चेलों, शिष्यों, उपदेश सुनने वालों और अपने सिद्धान्तोंका प्रचार करने वालोंकी आवश्यकता होती है। मतलब यह है कि उसे प्रत्येक अवस्थामें सहायकों और सहयोगियोंकी आवश्यकता होती है। जब ऐसी स्थिति है तो मनुष्य सामाजिक और सार्वदेशिक सहयोग और संगठनकी भावनासे छुटकारा कैसे पा सकता है। उसकी इच्छा हो

या न हो, उसे समाज और देशका एक अंग बनकर रहना ही पड़ेगा।

आजकल बहुत-से मनचले युवक ऐसे मिलते हैं जो अपनेको देश और समाजके बन्धनोंसे मुक्त रखनेकी भ्रमयुक्त भावनाको स्वतन्त्रता समझने लगते हैं; परन्तु इसकी जड़में उनकी संकुचित दृष्टि ही काम करती है। वे अपने समाज या देश-वाशियोंकी त्रुटि देखकर ही उसका अंग बननेसे अस्वीकार करते हैं; पर अन्ततः उन्हें किसी ऐसे दलमें मिलने-जुलने, कुछ ऐसे व्यक्तियोंसे व्यवहार करनेके लिये वाध्य होना पड़ता है जो उसकेसे विचार रखता है। ऐसी अवस्थामें उसकी पहली धारणाका क्रियात्मक खण्डन हो जाता है और उसे सामाजिक जीव बनना ही पड़ता है चाहे उसके उस समाजका क्षेत्र संकीर्ण ही क्यों न हो।

मनुष्य जातिके अन्दर स्नेह, सौजन्य, क्रोध, शौर्य, घृणा आदि विविध मनोवृत्तियोंका जो स्रोत अप्रकट रूपसे विद्यमान होता है, समाजमें हिलने मिलनेसे उनका विकास होता है। समाजमें हिलने-मिलनेसे एक ओर जहाँ मनुष्यको अपना कुछ समय और धन व्यय करना पड़ता है वहाँ उसे उससे लाभ भी होता है। वह लाभ आर्थिक भी होता है और मनुष्यके मानसिक विकास सम्बन्धी भी। समाजमें विविध प्रकारके लोग मिलते हैं—उनके स्वभाव, कार्य तथा शौकमें अन्तर होता है। इस प्रकार विभिन्न प्रकारके लोगोंसे मिलकर मनुष्यका ज्ञान अपेक्षाकृत अधिक व्यापक हो जाता है और उसे व्यवहार-कुशलताकी शिक्षा अपने आप मिलती रहती है।

सामाजिक जीवनसे दूसरा बड़ा लाभ यह है कि मनुष्य अपने व्यक्तित्वकी विशिष्ट छाप अपने मिलने वालों पर डाल देता है जो उसके पेशेके लिये भी लाभदायक होती है। इसके विपरीत जो सामाजिक जीवनमें प्रविष्ट न हो एकाकी जिन्दगी बिताना अधिक पसन्द करता है उसे न तो लोग चाहते हैं, न उसके पेशेमें भी कोई सहायक सिद्ध होता है। लोग उसे मनहूस कहते हैं। कोई उसके पास नहीं फटकता।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हमें प्रत्येक दृष्टिसे समाज और देशके प्रति कुछ कर्त्तव्योंका पालन करना पड़ता और कई बातोंमें उस पर निर्भर करना पड़ता है। जो लोग इन बातोंका ख्याल नहीं करते, उन्हें समाजमें कोई स्थान नहीं मिलता और न वे उन बातों से लाभ उठा सकते हैं, जो सामाजिक संघर्षके फलस्वरूप मनुष्यमें उत्पन्न होती हैं।

